ऋषभायण

आचार्य महाप्रज्ञ

जैन विश्व भारती प्रकाशन



प्रकाशक जैन विश्व भारती,
लाडनूं-३४१३०६ (राज)

सौजन्य श्री चंपालाल जी, अशोक कुमार,
नवदीप कुमार वोहरा
(सेलम-चतराजी का गुडा)

संस्करण १९९९

मूल्य अस्सी रुपए

मुद्रक शान्ति प्रिन्टर्स एंड सप्लायर्स, दिल्ली

RISHABHAYAN
Acharya Mahaprajana **Rs 80/-**

प्रस्तुति

ऋषभ की कथा भारतीय संस्कृति के आदि सर्ग की कथा है। इतिहास की सीमा बहुत छोटी है। प्रागैतिहासिक काल की नीहारिका मे अनेक सौरमडल छिपे हुए है। हिमालय के परिपार्श्व मे एक सभ्यता जन्म ले रही थी। यौगलिक युग अथवा आदिवासी युग परिसपन्न हो रहा था। वृक्षो पर आधारित मनुष्य कर्मभूमि के सिहद्वार मे प्रवेश कर रहा था। उस समय कुलकर नाभि के परिकर मे ऋषभ ने जन्म लिया। उनका जन्म एक नई सभ्यता और नई सस्कृति का सृजन था। उन्होंने समाज की व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण कार्य किया इसीलिए आचार्य जिनसेन ने उन्हे *प्रजापति, धाता और विधाता की अभिधा से अभिहित* किया।

प्रस्तुत काव्य में ऋषभ का चरित्र है इसलिए इसका नाम ऋषभायण है। ऋषभ की जीवन कथा समाज व्यवस्था की आत्मकथा है। दो युगो के संधिकाल मे भौगोलिक, सामाजिक, मानसिक और भावात्मक स्थितियो म होने वाला परिवतन समाज विकास की भूमिका का एक रोमाचक निदर्शन है।

विकास का एक क्रम होता है। कभी-कभी उसका *उत्क्रमण और सक्रमण* भी होता है। उत्क्रमण एक छलाग है और सक्रमण रूपातर है। इसी का नाम है क्रान्ति। इस क्राति ने यौगलिक युग के अकर्म युग को कर्मयुग तक पहुचा दिया, स्वच्छद विहार को ऋषभ राज्य तक पहुचा दिया।

जिस समाज म अर्थ ओर पदाथ का अभाव



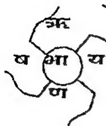
नहीं होता तथा उनका प्रभाव नहीं होता, वह समाज स्वस्थ समाज होता हे। योगलिक युग मे जीवन की प्राथमिक आवश्यकता की पूर्ति का अभाव नहीं था, पदार्थ का प्रभाव भी नही था। काल का परिवतन हुआ। अभाव की स्थिति उत्पन्न हुई। जीवन की आवश्यकताओ को पूरा करना दुर्लभ हो गया तव योगलिको मे ममत्व की चेतना जागी। अधिकार की वृत्ति ने अपने पेर पसारे। अव्यवस्था शुरू हो गई। अभाव, अपहरण, पराभव, असहिष्णुता, लडाई होती है तव व्यवस्था की आवश्यकता अनुभूत होती है। इस अनुभूति ने कुलकर व्यवस्था को जन्म दिया। लवे समय तक वह व्यवस्था चली।

अभाव की समस्या वढी। कल्पवृक्षो से जीवन की प्राथमिक आवश्यकताओ की पूर्ति कठिन हो गई। उस स्थिति म अधिकार और ममत्व की चेतना का विकास हुआ। योगलिक सार्वजनिक वृक्षों पर अपना अधिकार करने लगे। प्रवृत्ति ओर मनुष्य स्वभाव दोनो का अध्ययन करने पर लगता है कि अभाव ममत्व (मेरापन) ओर अधिकार वृत्ति, सग्रह की मनोवृत्ति के लिए उद्दीपन का काम करता है। इस अभाव, ममकार ओर अधिकार की वृत्ति ने कुलकर व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर दिया। इस समस्या के समाधान के लिए कुलकर नाभि ने राज्य की व्यवस्था की और ऋषभ को प्रथम राजा के रूप मे प्रतिष्ठित किया। जीवन की आवश्यकता पूति के साधनो का सम्यक् नियोजन करना राज्य का प्रमुख काय है। सम्यक् नियोजन क अभाव में अपराध वढते हे। अथ ओर

पदाथ का सम्यक् नियोजन हाने पर अपराध की चेतना को उद्दीपन नहीं मिलता।

ऋपभ राज्य यौगलिक युग की चेतना से प्रभावित था। उस समय ममत्व और अधिकार की चेतना अकुरित हो रही थी इसलिए उसमे छीना-झपटी जैसी साधारण घटना कभी-कभी घटित हो जाती किन्तु कोई बड़ा अपराध और कोई बड़ा अपराधी नहीं था। वह एक अर्थ में शासन-मुक्त समाज का सचालक राज्य था। पदार्थ कम थे इसलिए समाज मे सग्रह-मुक्त चेतना का साक्षात् हो रहा था। आत्मानुशासन की चेतना जागृत थी इसलिए शासन-मुक्त चेतना दृष्ट हो रही थी। नए-नए पारिवारिक सवध स्थापित हो रहे थे इसलिए सवध चेतना भी वहुत पुष्ट नहीं थी। नौकर-चाकर, दास और प्रेष्य की कोई कल्पना भी नहीं करता था इसलिए हर मनुष्य में स्वावलवन की चेतना जागृत थी। पारस्परिक स्वार्थों की टक्कर नहीं थी, सहज ही प्रकृति की सरलता थी इसलिए वैर-मुक्त चेतना का प्रत्यक्षीकरण किया जा सकता था। स्वल्प, सादा और सहज प्राकृतिक भोजन था इसलिए उस समय मनुष्यो की चेतना रोग ओर आतक से मुक्त थी। पदार्थों का वहुत विकास नहीं था इसलिए ऋपभ राज्य को अविकसित राज्य कहा जा सकता हे। चेतना पर आवरणो की काली छाया नहीं थी इसलिए जागृत चेतना की दृष्टि से उसे विकसित राज्य कहा जा सकता हे।

उस समय ग्रहण शिक्षा या वौद्धिक शिक्षा का



विकास बहुत कम हुआ था किन्तु विवेक जागरण की शिक्षा का विकास अभिलषित मात्रा मे हो चुका था। भगवान ऋषभ ने जनता की हेय और उपादेय की चेतना पर्याप्त मात्रा मे विकसित की। फलस्वरूप भरत क्षेत्र विदेह (विकसित) क्षेत्र जैसा बन गया। ऋषभ ने समाज की व्यवस्था को स्थिर बना कर आत्मा की खोज के लिए प्रस्थान किया। वे मुनि बने, तप तपा, आत्मा का साक्षात् किया और आत्मा के प्रवक्ता बने। इस युग के प्रथम आत्मज्ञ और प्रथम आत्मविद्या के व्याख्याता रहे।

प्रस्तुत काव्य अनेक विकास की भूमिकाओं, मनोरजक घटनाओ से सश्लिष्ट है। इसका निर्माण एक विशेष कल्पना के साथ हुआ इसलिए यह न केवल विद्वद् योग्य है ओर न केवल जन भोग्य। यह दोनो की मनोदशा का स्पर्श करने वाला है। कुछ वर्ष पूर्व गुरुदेव तुलसी ने कहा 'ऋषभ पर एक काव्य लिखो। यह कोरा काव्य न हो, व्याख्यान भी हो। कोरा व्याख्यान न हो, काव्य भी हो।' उस कल्पना का निर्वाह करना सरल तो नहीं था पर मैने अपने आचार्य के किसी भी इगित को कठिन नही माना इसलिए कठिन भी सरल बन गया। कथावस्तु की सरलता व्याख्यान की शैली का अनुभव करा रही है और रसात्मकता काव्य की शैली का अनुभव करा रही है। अभिधा व्याख्यान का आनद दे रही है, लक्षणा और व्यजना काव्य का आस्वाद करा रही है।

सन् 1990 पाली चातुर्मास मे इसकी रचना प्रारभ हुई। इसकी सपूर्ति 1995 लाडनू में हुई। कार्य

शैली समयावधि के साथ बंधी हुई रहती है। आगम संपादन प्रमुख कार्य है। वह मध्याह्न मे चलता है। प्रात काल स्वाध्याय और ध्यान के प्रयोग चलते हे। जनता के बीच प्रवचन भी होता है। कुछ समय संघीय विकास की योजनाओं ओर समस्याओ के समाधान मे लगता है। ऋषभायण के लिए निर्धारित समय था सायकालीन आहार के बाद सूर्यास्त से पहले-पहले। कभी आधा घटा का समय मिलता और कभी बीस मिनट का। उस समय को म एकात रखना चाहता था फिर भी कुछ लोग अनिवार्य बातचीत का प्रसग लेकर आ जाते ओर समय की कटौती हो जाती। दिल्ली प्रवास (सन् 1994) का पूरा वर्ष लगभग रचना से शून्य ही बीता। कभी दो पद्य बनते, कभी एक और कभी तीन चार। एक भाषा मे कहा जा सकता है— ऋषभायण का निर्माण यान्त्रिकता के साथ हुआ है। काव्य का निर्माण यत्रवत् नहीं होता। जब भाव और कल्पना का उदय होता है तभी काव्य लिखा जाता है। पर मेरी नियति इससे भिन्न रही है फिर भी रचना कार्य सपन्न हो गया। इसका हेतु आचार्य तुलसी की अभीप्सा और प्रेरणा है। मे इसे अपना सौभाग्य मानता हू कि मैंने उनकी विद्यमानता मे काव्य को सम्पन्न कर गुरुदेव के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। गुरुदेव की प्रसन्नता को भी मेने साक्षात् देख लिया। गुरुदेव के समक्ष इस काव्य का पारायण करना था। वह इच्छा पूरी नहीं हो सकी। उत्पादव्ययधर्मा जगत् में हर इच्छा की पूर्ति की कल्पना करना अपने आप मे अति कल्पना हे।

इसकी प्रतिलिपि शासन गौरव मुनि मधुकरजी ने की। इसका जैन भारती मे क्रमश प्रकाशन हुआ। इसके सशोधन मे मुनि दुलहराज जी और मुनि धनजय कुमार ने काफी श्रम किया। अब यह चिर प्रतीक्षा के बाद पाठक को उपलब्ध हो रहा है।

आचार्य महाप्रज्ञ

१ सितम्बर ९९
अध्यात्म साधना केन्द्र
महरौली, दिल्ली

'ऋषभायण' मानव जाति के आदि-युग की जीवन्त गाथा है और उस गाथा का महाकाव्य के रूप म गुम्फन किया है वर्तमान युग के मनीषी चिन्तक आचार्य महाप्रज्ञ ने। इस देश की चिन्तन-धारा और सस्कृति को प्रभावित करने वाले महापुरुषो के जीवन चरित्र को आधार बनाकर अनेक खण्ड काव्य ओर महाकाव्य लिखे गए हैं किन्तु मानवीय सभ्यता के आदिपुरुष ऋषभ को आधार बना कर लिखा गया यह प्रथम विशिष्ट काव्य है। ऋषभ ने युग-परिवर्तन के समय नइ सभ्यता और नई सस्कृति का किस पकार सृजन किया, इसका जीवन्त चित्रण है इस महाकाव्य मे। केसे सृष्टि का विकास हुआ? कब समाज-व्यवस्था का सूत्रपात्र हुआ? कैसे राजनीति का तत्र विकसित हुआ? दडनीति का अनचाहा अभिलेख कब लिखा गया? मनुष्य ने अकर्म युग से कर्म युग म प्रवेश कब किया? इन सारे प्रश्नो को समाहित करने वाला महाकाव्य ह ऋषभायण।

सम्पादकीय

मनस्वी कवि महाप्रज्ञ द्वारा प्रणीत इस काव्य मे केवल आदि-युग का वर्णन ही होता तो इसका समृद्ध इतिहास और पुराण की आधुनिक भाषा मे प्रस्तुति से अधिक मूल्य नही होता। कवि ने इस काव्य मे वर्तमान युग की ज्वलत समस्याओ के मूल का स्पर्श भी किया हे इसलिए इस काव्य मे युग चेतना को प्रभावित एव समाहित करने वाले ज्योतिर्मय स्पदन ह। आज की एक समस्या हे मानसिक तनाव। पूरा विश्व इस समस्या स आक्रात हे। कवि की दृष्टि मे



इस समस्या का कारण है केवल बौद्धिक विकास। जहां बुद्धि भावना से अनुशासित होती है वहां 'श्री' का उदय होता है।

ह्री से धी अनुशासित होती
श्री बढ़ती है अपने आप।
केवल बौद्धिक सवर्धन से
बढता है मानस सताप।

भगवान् ऋषभ के अवतरण से पूर्व न शिक्षा थी ओर न दीक्षा। मनुज शिक्षा ओर दीक्षा से शून्य था। ऋषभ ने जनता को शिक्षा से शिक्षित आर दीक्षा से दीक्षित किया। असि, मषि और कृषि का प्रवर्तन किया। विद्या, शिल्प, कला, व्यवसाय आदि का प्रशिक्षण दिया। केवल पुरुष को ही नहीं, नारी को भी लिपि ओर गणित की शिक्षा दी। यदि ऋषभ चरित्र की विस्मृति नहीं होती तो 'शिक्षा का नारी को अधिकार नही हे'—यह भ्रांति कभी नहीं पलती। मनीषी कवि महाप्रज्ञ ने ऋषभ की समाज व्यवस्था म नारी उत्थान का विश्लेषण अत्यत मार्मिक ढग से किया है—

लिपि गणित की शिक्षा म
नारी को पहला स्थान मिला
कोमलतम अतर में कोइ
परिमल परिवृत पुष्प खिला।
नारी को अधिकार नहीं ह
शिक्षा का यह भ्राति पली
ऋषभ चरित की विस्मृति स ही

मिथ्या मति विष वेल फली।
पशु पक्षी शिक्षित हो सकते
फिर नारी की कोन कथा?
दीघ काल अज्ञान तमस की
झेली उसने मोन व्यथा।
पतला हे आवरण, वही जन
शिक्षा का हे अधिकारी
जिसे लब्ध मस्तिष्क प्रवरतम
फिर वह नर हो या नारी।

वह नेता ओर राजा ही जनप्रिय होता है, प्रजा के दिल को जीत सकता है, जो आजीविका के उपाय सुझाता हे, जनहित की साधना म निरत रहता हे। जनता के हित की चिन्ता न करने वाला नेता केवल शासन का भार ढोता है। उसे जनता से सम्मान नहीं मिलता। जो अधिकार मिलता हे, वह भी अतत धिक्कार मे वदल जाता हे। शासक केसा हो? इस सदर्भ में दिशाबोध देने वाली ये पंक्तिया नेतृ वर्ग के लिए मननीय ह—

जन हित साधन मे न निरत हे
केवल ढोता पद का भार
वह क्या राजा वह क्या नेता?
उससे पीडित हे ससार।
जनता से अधिकार प्राप्त कर
नहीं कभी करता उपकार।
प्रथम वर्ण का लोप हो गया
और हो गया द्वित्व ककार।

आज की समस्या यह हे—व्यक्ति दूसरो पर शासन



है। जहा आर्थिक असदाचार बढता है, दु ख-दुविधा से पीडित जनता के हित की चेष्टा नहीं होती वहा शासन रुग्ण ओर अप्रीतिकर बन जाता है। इसी शाश्वत सचाई का बोध भगवान ऋषभ ने अपने पुत्र भरत को दिया—

वह सभव बनता सहज
शासक अर्थ अलिप्त
सिहासन की अर्चना
कर सकता जो तृप्त।
अर्थ लुब्ध यदि सचिव है
पद पद प्रथित अनर्थ
शासक ही शोषक तदा
जल सिचन है व्यर्थ।
जनता की दुविधा मिटे
शासन का है धयेय
दुविधा की यदि वृद्धि हो
वह आमयकर पेय ।
चरण चरण के साथ चले
मन मे प्रतिपद सवेदन हो
जनतापी पीडा से विगलित
रोम रोम मे स्वेदन हो।

अपने ज्येष्ठ पुत्र भरत को राजनीति का मार्मिक सबोध ऋषभ ने तब दिया जब उन्होंने अतीन्द्रिय चतना से देखा। उन्हाने यह अनुभव किया—जब क्रोध मान माया, लोभ आदि आवेश प्रबल होते है, तब धर्म आवश्यक होता है। जब ममता का धागा टूटता ह, तब धम का उदय होता है। जब सत्य का

साक्षात्कार करने का सकल्प जागता है, तब धर्म का द्वार उद्घाटित होता है। गीता की भाषा मे इन्द्रिय चेतना से परे मन और बुद्धि से परे जो तत्त्व है, उस तत्त्व को पाने की चाह उदग्र बनती है तब धर्म की दिशा मे अभिक्रम होता है। ऋषभायण में इस तथ्य को रेखाकित करने वाली काव्य पंक्तिया है—

जब जब लोभाकुर बढता है
बढता आसुर क्रोध
अहकार माया का अचल
भय, ईर्ष्या, प्रतिशोध
होता आवश्यक तब धर्म
जिससे होता सस्कृत कर्म।
ममता के कामल धागों से
बनता मनुज समाज
ममता की अति ही करती है
मानव मन पर राज।
करे प्रवर्तन धमचक्र का
आवश्यक अब योग
सकटकारी केवल भोग
अति स बढते सारे रोग।

परिवार, समाज, राज्य—सबका त्याग कर ऋषभ सन्यास के पथ पर चल पडे। नगे पैर पदयात्रा, भूमि पर शयन। न भोजन की चिन्ता और न पानी की। केवल आत्म-साक्षात्कार का निर्विकल्प सकल्प। अनगिन कष्ट सहे पर अविचल रहे। मानसिक सतुलन, समता ओर प्रसन्नता मे कभी न्यूनता नहीं आइ। जनता उनके इस तपोबल, मनोबल ओर

आत्मवल के समक्ष प्रणत हो गई। उनकी कष्ट सहिष्णुता सुविधावादी युग के लिए एक चुनौती हे। घोर कष्टो मे भी सुरभित पुष्प सा जीवन जीवन्त वोध पाठ है। ऋपभ की कष्ट सहिष्णुता जनता के मुख से नि सृत इन पंक्तियो मे कितनी सजीव वनी हे—

लाख गुना हे कठिन कष्ट मे
भी मुख पर मुस्कान रहे
नहीं किसी मानव के सम्मुख
व्यथा-कथा की वात कहे।

महान वही होता हैं, जो काटो भरी राहो मे मुस्काना सीख लेता हे। सुख, सुविधा ओर आरामतलवी का जीवन जीने वाला कभी महानता के शिखर का स्पर्श नहीं कर सकता। भगवान ऋपभ ने घोर तप तपा, बारह मास तक निराहार-निर्जल रहे। राजकुमार श्रेयास के इक्षुदान से सपन्न उनकी तपस्या का पारणा एक महान् उत्सव का स्रोत वन गया। अक्षय तृतीया के नाम से विश्रुत वह महान् पर्व त्याग-तपोमय जेन सस्कृति का स्वयभू साक्ष्य बना हुआ है। उस दिन वर्षी तप करने वाले सेकडो हजारो भाइ-वहिन अपने तप का सोत्साह सपन्न करते हे ओर नव वर्ष के लिए तप अभिक्रम का सकल्प लेते हे। वैशाख शुक्ला तृतीया का यह दिन भगवान् ऋपभ की स्मृति को जीवन्त वनाए हुए है। इस दिन भगवान् ऋपभ ने साधना के विघ्न-मल को धो डाला था—

पारणा दिन पर्ववर
अक्षय तृतीया हो गया
साधना के विघ्न मल को

जलद जैसे धो गया
ज्ञान से अज्ञान का
आवरण जैसे हट गया
आज धरती-पुत्र का
मुख दीप्त, बंधन कट गया।

तपस्या की आच में साधना का सोना कुदन बन निखर रहा था। एक दिन वह अपूर्व सिद्धि की आभा से दमक उठा। अयोध्या महानगर का उपनगर पुरिमताल। शकटमुख नाम का रमणीय उद्यान। चैत्यवृक्ष की छाया मे ध्यान लीन ऋषभ। वृक्ष और मनुष्य मे एक अनबोला सा रिश्ता है। मनुष्य वृक्ष से प्यार करता है। वृक्ष उसके जीवन का एक आधार जैसा बना हुआ है। इतना ही नहीं, बोधि के उदय मे श्रेष्ठ वृक्ष निमित्त बनते है। भगवान् बुद्ध, भगवान महावीर आदि अनेक महापुरुषों को वृक्ष के परिपार्श्व मे विशिष्ट बोधि की उपलब्धि हुई है। पर्यावरण की गहराती समस्या ने आज वृक्षो की उपयोगिता की ओर सबका ध्यान आकृष्ट किया है किन्तु अध्यात्म-चेतना के जागरण में भी वे सहायक बनते है, यह तथ्य प्राचीन काल से ही विज्ञात रहा है—

मानव तरु मे रहा अभेद
जुड़ा परस्पर अति संवेद
जीता मानव तरु के साथ
तरु ने भी फैलाया हाथ।
मानव करता तरु से प्यार
तरु उसका जीवन आधार
बोधि उदय में सुतरु निमित्त

स
म्पा
द
की
य



निर्मल लेश्या निर्मल चित्त।
वट के नीचे प्रभु का वास
ज्ञान सूर्य का अमल प्रकाश
तीन दिवस का वर उपवास
आत्मा मे चैतन्य निवास।

आत्मा की अमल सन्निधि म लीन ऋषभ के समस्त आवारक, विकारक और अवरोधक कर्मो का विलय हुआ। निरावरण ज्ञान, अव्यावाध सुख आर अप्रतिहत शक्ति का स्रोत उद्घाटित हो गया। कैवल्य का वरण कर ऋषभ आत्मा के विज्ञाता वन गए। कैवल्य उपलब्धि के उस अनुत्तर क्षण म ससार के प्रत्येक प्राणी ने सुख के स्पदन का साक्षात्कार किया। कैवल्य का वरण प्रत्येक प्राणी के लिए सुखानुभूति का क्षण वन गया—

उदित हुआ वर केवल ज्ञान
कलश अमृत का अमृत पिधान
हो सकता सर्वज्ञ मनुष्य
शेष जीव हे इन्द्र धनुष्य।
सकल विश्व मे सुख सचार
वंचित नही नरक का द्वार
आत्मा से आत्मा का योग
आदिनाथ से जन्मा योग।

भगवान ऋषभ आत्मा के प्रथम विज्ञाता, प्रवक्ता और तीर्थकर वन गए। उन्होंने इस सत्य पर हस्ताक्षर कर दिया कि मनुष्य अपनी साधना आर पुरुषार्थ से सर्वज्ञ बन सकता है। जो आवरण का विलय, विकार का क्षय और अक्षय शक्ति का अभ्युदय कर लेता

है, वह सवज्ञ वन जाता है। मानव के भीतर असीम समावनाए छिपी है। कैवल्य की उपलब्धि करने वाला इन समावनाओ को सच मे बदल देता है।

सर्वज्ञ ऋषभ का जनपद विहार आत्म-सिद्धात के प्रतिपादन ओर धर्म तीर्थ के प्रवर्तन का आधार वन गया। वे विनीता के परिपार्श्व मे आए। पुत्र की स्मृति से विह्वल मा मरुदेवा की मनोकामना पूरी हो गई। ऋषभ की अपूर्व सिद्धि ओर समृद्धि ने ऊर्ध्वारोहण का पथ प्रशस्त कर दिया। 'मा मरुदेवा' इस युग की पहली 'सिद्ध' वन गई। भगवान ऋषभ ने आत्मा के सिद्धात का प्रतिपादन किया। धम चक्र का प्रवर्तन हो गया। उनकी सार्वभोम धर्मदेशना जनता के हृदय-परिवर्तन की कहानी वन गई—

आत्मा सत्य शिव सुन्दर
आत्मा मगलमय अभिधान
उपादान है परमात्मा का
सयम है उसका अवदान।
कम क्रिया का, पुनर्जन्म का
आत्मा से सबध विशेप
इन धारा पर आधारित हो
मानव का आचार अशेप।
मानवीय आचार-सहिता
का आधार अहिसा है
शाति भग दुख बीज वपन कर
हसने वाली हिसा है।

भगवान् ऋषभ अहिसा धर्म का प्रवतन कर रहे थे ओर राजा भरत राज्य-विस्तार की आकाक्षा को

स
म्पा
द
की
य



मूर्त रूप देने के लिए कृत संकल्प बने हुए थे। चक्र रत्न का प्रादुर्भाव, अनेक दिव्य रत्नों की उपलब्धि ने उनकी विजयाकांक्षा को प्रदीप्त किया। इसे भाग्योदय की शुभ वेला के रूप में स्वीकार कर उन्होंने विजय-अभियान शुरू कर दिया—

भाग्योदय की शुभ वेला में
मिलते सभी किनारे
महापुरुष की जन्म कुंडली
सगत सभी सितारे।

इस विजय-अभियान में भरत ने विश्व के अनेक अचलों को अपने अधीन बनाया। अनेक राजाओं ने भरत की शरण स्वीकार कर कृतार्थता की अनुभूति की। भगवान् ऋषभ के अठानवे पुत्र भरत की राज्य विस्तार की आकांक्षा से विचलित होकर भगवान् ऋषभ की शरण में चले गए। ऋषभ का संबोध प्राप्त कर इस तुच्छ राज्य सुख को त्याग कर महान् आत्म राज्य के सुख का मार्ग चुन लिया।

ऋषभ का संबोध पा अठानवे पुत्र संबुद्ध बन गए। भाई भरत से युद्ध का विचार त्याग वीतराग पथ पर चलने का संकल्प ले लिया। ऋषभ का वह संबोध आज भी तृष्णाकुल मनुष्य के लिए पाथेय बना हुआ है—

संबुज्झह किं नो नो बुज्झह
आंको तुम इस क्षण का मूल्य
नृप पद दुर्लभ बोधि सुदुर्लभ
क्या मणि मणि सब होते तुल्य।
एक बड़ा आधार बोधि का

भाई-भाई मे सघर्ष
समाधान केवल उदारता
बन सकता है यह आदर्श।
भाई-भाई में सगर की
गाएगा हर युग गाथा
सोचो कैसे भावी पीढी
का होगा ऊचा माथा।
अंतिम परिणति महासमर की
होती समझौता या संधि
नहीं वैर से आग बुझेगी
जल कृशानु का है प्रतिबंधि।
मेरा राज्य विराट् अलोकिक
जहा न इच्छा का लवलेश
युद्ध और सघर्ष विवर्जित
नही क्लेश का कहीं प्रवेश।
इस सुराज्य मे बन जाता हैं
जो अवधु वह सहसा बधु -
लोक राज्य की महिमा, देखो
कैसे बनता बधु अवधु।

ऋषभ के इस उपदेश से भाई-भाई के बीच सभावित युद्ध का खतरा टल गया। किन्तु जहा अधिकार की वृत्ति है, स्वामित्व के विस्तार की आकाक्षा है, दिग्विजय का स्वप्न है, वहा युद्ध अनिवार्य है। अठानवे भाइयो के शासन को प्राप्त कर भरत तृप्त नहीं हुआ। शस्त्रागार के बाहर खडा दिव्य चक्र दिग्विजय की अपूर्णता की गाथा गा रहा था। सेनापति सुषेण की इस सूचना ने एक नए युद्ध



की तेयारी का सकेत दिया, किन्तु भरत का मानस युद्ध से वितृण्ण हो चुका था। उसने कहा—यह समर की देवी प्राणो की वलि लेकर तृप्त होती हे। युद्ध का अर्थ है पर अस्तित्व का अस्वीकार।

तृप्त होती समर देवी
प्राण का वलिदान ले
यह समर केसे मनुज को
प्राण का आयाम दे।
निज अह को पुष्ट करने
की महेच्छा युद्ध है
रक्त रजित भूमि नर की
क्रूरता पर क्रुद्ध हे।
युद्ध पर अस्तित्व का
प्रत्यक्ष अस्वीकार हे
तत्र है परतन्त्रता का
सृष्टि का सहार है।
चाहते हो यदि भलाइ
मनुज की, ससार की
शस्त्र वस शोभा वढाए
स्वस्ति शस्त्रागार की।

शस्त्र को शस्त्रागार की शोभा मानने वाले भरत के सामने नए युद्ध का श्रीगणश हो गया। भाई-भाई के वीच होने वाला एक युद्ध ऋषभ के उपदेश से टला किन्तु वाहुवलि के साथ युद्ध अपरिहार्य हो गया। दूत द्वारा सदेश का सप्रेषण। वाहुवलि द्वारा अधीनता को स्वीकार न करने का सकल्प। भरत-वाहुवलि का

युद्ध भूमि मे मिलन और भाई-भाई के बीच युद्ध का शुभारभ। सेना के मध्य भीषण सघर्ष। हजारो सैनिको का प्राण विसजन। युद्धशास्त्र के शब्द कोश में करुणा शब्द ही कहा है? वहा जितना वैरी के हृदय में घाव होता है, उतना ही यश मिलता है--

युद्ध शास्त्र के शब्दकोश मे
करुणा-पद का निपट अभाव
उतना यश जितना वैरी के
उर म होता गहरा घाव।

भरत बाहुबलि के इस युद्ध मे एक अभिनव मोड़ आया। नरसहार और रक्तपात से शून्य युद्ध की घोषणा की गई। भरत और बाहुबलि की सेनाए केवल द्रष्टा और साक्षी बनी। युद्ध में आमने-सामने थे भरत और बाहुबलि। उन्होने पाच प्रकार के युद्ध लड़े—दृष्टि, मुष्टि, स्वर, बाहु और यष्टि का युद्ध। भरत-बाहुबलि के चिन्तन न हिसक युद्ध को अहिसक युद्ध मे बदल दिया। कवि महाप्रज्ञ ने युग की आदि म सपन्न इस अहिसक युद्ध को ऋषभ के अगम प्रभाव के रूप में प्रस्तुत किया है—

बदलें हिसक रण की धारा
करे आज अभिनव प्रस्थान
कार्य हमारा समरागण को
दगा एक नई पहचान।
युद्ध अहिसक होगा अब से
हम दोनो का दृढ सकल्प
दृष्टि, मुष्टि का, सिहनाद का
बाहु यष्टि का पाच विकल्प।



संधि हुई है उभय पक्ष मे
प्रभु का कोई अगम प्रभाव
भरत बाहुबलि मे ही सगर
होगा, जग का जटिल स्वभाव।

इस अहिसक युद्ध मे बाहुबलि ने विजयश्री का वरण कर लिया—

अतरिक्ष न कहा बाहुबलि
विजयी, जय लघुता को लब्ध,
भरत ज्येष्ठ पर, बल ज्येष्ठ लघु,
धरती अबर सब ही स्तब्ध।

इस पराजय ने भरत को क्षोभ ओर क्रोध से आविष्ट कर दिया। उसने मर्यादा का अतिक्रमण कर चक्ररत्न का प्रक्षेप किया किन्तु चक्ररत्न बाहुबलि की परिक्रमा कर लौट आया।

मर्यादा के इस अतिक्रमण से बाहुबलि का रोष प्रचड बन गया। बाहुबलि मुट्ठी तानकर भाई के सहार के लिए आग बढा। भाई भाई को मारने के लिए मचल उठा। उस समय सुरगण ने बाहुबलि का पथ रोका। क्रोध को उपशान्त करने की प्रेरणा दी। उस प्रेरणा ने बाहुबलि के हृदय का स्पर्श कर लिया—

शात शात उपशात बनो हे,
ऋषभ-ध्वज के वश-वतस।
मुक्ता का आकाक्षी होगा
मानस सरवर का वर हस।
सलिल बिन्दु स सिक्त दुग्ध का
शात हा गया सहज उफान

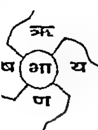
शात हुआ आवेश जटिलतम
स्फुटित हुआ चिन्तन अम्लान।

वाहुवलि की चिन्तन धारा वदल गई, दिशा वदल गई। भाइ को जीतने की चाह वुझ गई। अपने आपको जीतने की चाह प्रवल बन गई। आवेश की जगह शाति की सरिता प्रवाहित हो गई। परिवर्तन की यह गाथा त्याग के महत्व का जीवन्त हस्ताक्षर वन गई–

हत! हत! आवेश क्लेश के
आवरणों का सरजनहार
वधु वधु के वीच कलह का
यही वीज हे, यही प्रसार।
शून्य मे उभरा प्रवर स्वर
त्याग ही सुलझा सकेगा
युद्ध की इस अग्नि को यह
त्याग नीर बुझा सकेगा
स्वार्थ-विप सव्याप्त जग में
त्याग ही तो अमृत फल हे।

वाहुवलि के इस अभिनिष्क्रमण के प्रति भरत प्रणत हो गया। जो कुछ क्षण पहले भाइ को मारने के लिए उद्यत था, वह क्षमा की याचना करने लगा। अपराध वोध से ग्रस्त भरत का आत्म निवदन त्याग की यशोगाथा वन गया–

हे किया अपराध मने-
युद्ध भाई स लडा है
विजय का वरदान लेकर
यह हिमालय सा खडा हे



हे क्षमासिन्धो ! क्षमा दो
अब क्षमा की ही शरण है।

बाहुबलि की साधना में अहकार अवरोध बन गया। ऋषभ के द्वारा उत्प्रेरित ब्राह्मी-सुन्दरी ने बाहुबलि को सबोध दिया। वह अहकार के हाथी से नीचे उतरा। उसे जो अब तक अनुपलब्ध था, अप्राप्य था, वह सब कुछ मिल गया—

आत्मा का दर्शन, दर्शन आदीश्वर का
साक्षात् हुआ भगिनी का, अपने घर का
सब एक साथ ही दर्शन पथ में आए
मधुमास मास मे कुसुम सभी विकसाए।

बाहुबलि की साधना सिद्ध हो गइ। भरत के हृदय मे भी आसक्ति के बधन को तोड़ने की चाह प्रबल बनी। जहा अनासक्ति होती है, वहा बधन कैसे होगा?व्यक्ति को बाधती है आसक्ति। अनासक्ति मुक्ति का पथ है, दर्शन है। भरत ने इस सचाई का साक्षात्कार किया और उसे मुक्ति का सूत्र उपलब्ध हो गया—

आत्मा का साक्षात् हुआ है
उदित हुआ है केवल ज्ञान
सहज साधना सिद्ध हुई है
अनासक्ति का यह अवदान।
छूट गया साम्राज्य सकल अब
नहीं रहा जन का सम्राट्
टूट गए सीमा के बधन
प्रगट हुआ हे रूप विराट्।

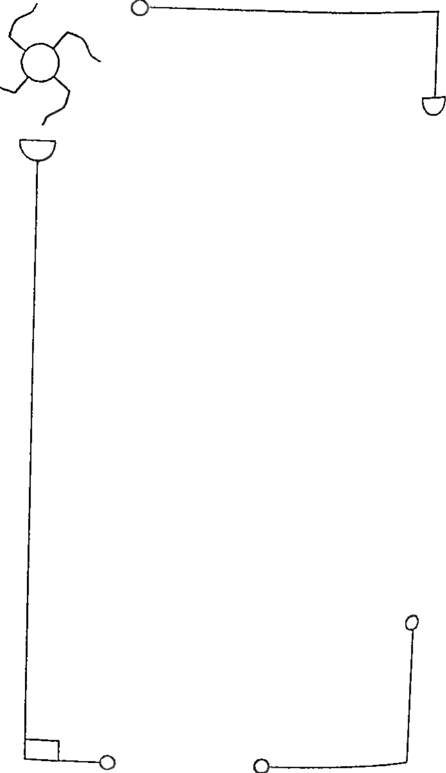
समस्या, दु ख अशाति और तनाव से मुक्ति ही

विराट् की उपलब्धि है। इसमे सुख, समाधि, शांति ओर समत्व की चेतना का जागरण होता है।

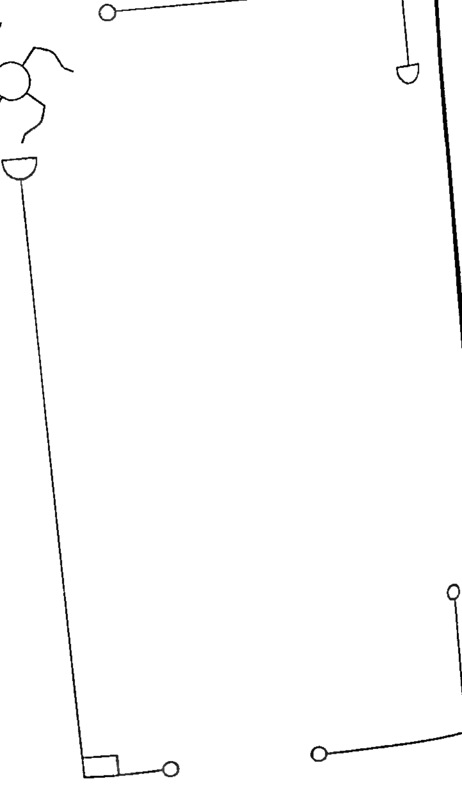
ऋषभ, भरत ओर वाहुवलि की यह मर्मस्पर्शी गाथा जीवन के ऊर्ध्वारोहण की गाथा है। आचार्य श्री महाप्रज्ञ ने इसमे भारतीय सस्कृति, दशन ओर अध्यात्म चेतना का सुन्दर एव मर्मस्पर्शी चित्रण किया हे। इसमे केवल अतीत का यशोगान ही नहीं है, वर्तमान की समस्याओ का समाधान भी है। समाज, धर्म, राजनीति को नई दृष्टि एव नई दिशा देने वाला यह ग्रथ भारतीय चेतना का दर्पण हे। मनस्वी कवि महाप्रज्ञ का यह मोलिक सृजन भारतीय मनीषा को प्रभावित करेगा, उसको नया आलोक और नई दृष्टि देगा।

इक्कीसवीं शताब्दी की वेसब्री से प्रतीक्षा कर रहे प्रवुद्ध मानव के लिए मे इसे एक अमूल्य उपहार मानता हू।

१३ नवम्बर १६६६ — मुनि धनजय कुमार
अणुव्रत भवन
नई दिल्ली



अनुक्रम



अणतमक्खर णिच्च
सासय सासयासय
उसभ पवरं वंदे
अत्तलीर्णं पवत्तग।

तीर्थंकरोऽसौ तनुजश्च चक्री
तीर्थंकरोऽय चरमश्च पौत्र
अपक्षपातेऽपि च पक्षपात
चित्र चरित्र महता जगत्याम्।

वाणीमदाद् विक्रमपौरुषाय
वीर स वन्द्य परमार्थसिद्ध्यै
परपराचार्यवरस्य भिक्षो
चिन्तामणेर्गौरवमातनोतु।

मंगलवचनम्



पीठिका

यह नीला-नीला सा क्या हे?
कब से कैसे सृष्टि-विकास?
प्रश्न चिरन्तन रहा उभरता
जव से चिन्तन में उच्छ्वास

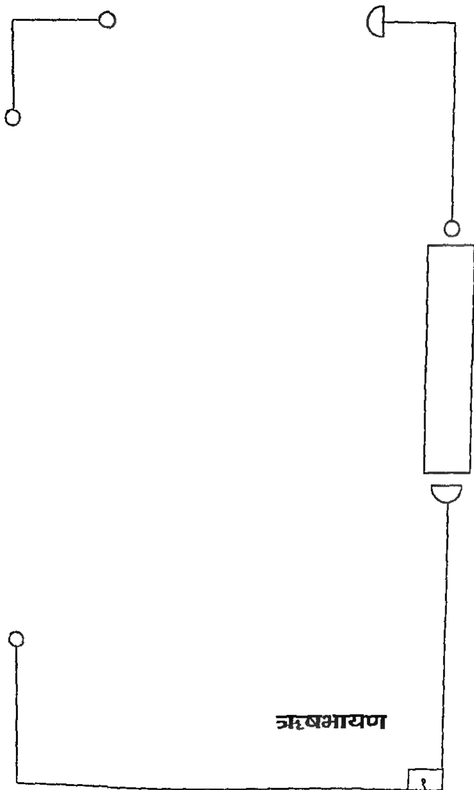
भापापुष्ट समाजतत्र की
सरचना का क्या इतिहास?
शिल्प कला कलना कौशल की
जगी मनुज मे कव से प्यास?

राजतत्र या राजनीति का
शिलान्यास कव हो पाया?
दण्डनीति का अर्थनीति का
सूत्र हाथ मे कब आया?

अपराधो का शिलालेख यह
अनचाहा कव लिखा गया?
कृपि का अभिनव महाग्रन्थ यह
कौन जगत् को सिखा गया?

किससे इस सन्यास माग के
सिहद्वार का उद्‌घाटन?
किस कृशानु की ज्वालाओं से
विपय-व्यूह का उच्चाटन?

समाधान इन सब प्रश्नो का
'ऋपभायण मे मिल जाए
जय हो जय हो आदि-पुरुप की
मन का सुमनस खिल जाए


ऋषभायण
१

पहला सर्ग

यौगलिक युग

प्रकाश आप्तो जनमानसेन
शक्ति सुलब्धा विशदाशयेन
आनदमूर्ध्वं समवाप यस्या
सेय त्रयी वाक् ऋषभस्य पातु।

सृष्टि-विकास

सलिल सत्य है तुहिन सत्य है
घनरस मूल तुहिन पर्याय
अनिल सत्य है सलिल सत्य है
अनिल मूल जल अनिल-निकाय

अनिल सलिल हिम सत्य सामयिक
है परमाणु अनन्त-अनादि
पशु-नर-सुर पर्याय चक्र है
मौलिक आत्मा अत न आदि

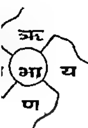
सत असत दोनो सहचर है
नहीं वितर्कित पौर्वापर्य
बादल की सत्ता जलमय है
नियति-लख मे कौन अवय?

हर शाखा पर, हर पत्ते पर
विहग प्रकपन का आसीन
मूल अकंपित पर्ण प्रकपित
तरु-सत्ता मे दोनो लीन -

सत्ता कालातीत न उसकी
सीमा मे है भूत भविष्य
कालभेद परिवर्तन मे है
जो कल था पय, आज हविष्य

सत असत सापेक्ष शब्द है
नहीं सर्वथा कहीं अभाव
नव जातक मे बाल, तरुण का
प्रौढ, वृद्ध का भावाभाव

सर्ग १



चेतन ओर अचेतन दो हैं
मूल तत्त्व ये नित्यानित्य
जितने थे, उतने ही होगे
रूपान्तर का नाम अनित्य

भोक्ता चेतन, भोग्य अचेतन
दोना से अन्वित है लोक
था, है, होगा, कभी न होता
इसके प्रागण में मृति-शोक

लोक और सृष्टि

चेतन ओर अचेतन की युति
की अभिधा व्यजन पर्याय
शाश्वत विश्व, सृष्टि का अभिनय
चलता है सक्रिय समवाय

उपादान परमाणु-वगणा
अकृत अगम्य अनादि अनत
नानारूप विविध परिवर्तन
पतझड, अधड और वसत

पूरे नभ-मण्डल मे फले
अणु-अणु मिल बनते है स्कन्ध
जीव वनाते उनसे अपना
देह स्वर्ण को मिली सुगध

जीव देह से हुआ विनिमित
दृश्य जगत् का रूप विशाल
जीवयुक्त या जीवमुक्त हे
उपवन म हर तरु की डाल

पृथ्वी, सलिल, कृशानु, समीरण
तरुगण, सब है जीव शरीर
पुद्‌गल-वेष्टित जीव सकल है
बद्ध तीर से जैसे नीर

रगभूमि मे ये दोनों नट
खेल रहे हैं नाना खेल
इनके पर्यायो से ही है
हरी-भरी जीवन की बेल

तैजस पुद्‌गल का सग्रह कर
प्राण सृजन करता है जीव
उससे सचालित होता है
चेतन का हर कार्य अतीव

सूक्ष्म स्थूल मे परिणत होता
स्थूल सूक्ष्म फिर हो जाता
परिणति का वैचित्र्य अकल्पित
ज्ञेय अचेतन चिद् ज्ञाता

भारतवर्ष

अनुपम अमित असीम गगन मे
एक बिंदु-सा लोकाकाश
अगणित सविता गण के उज्ज्वल
रश्मिजाल से प्रथित प्रकाश

सख्यातीत द्वीप परिकर में
एक भूमि वर भारतवर्ष
हिमगिरि के उत्तुग शिखर से
धवलित आलोकित उत्कर्ष



कालचक्र

परिवर्तन का हेतु काल, वह
जल-प्रवाह ज्यो वहता हे
द्वादशार यह कालचक्र
गतिशील निरतर रहता है

अवसर्पण में वस्तु-गुणो का
होता है क्रम-क्रम से ह्रास
उत्सर्पण मे उनका होता
उसी नियम से क्रमिक विकास

यौगलिक जीवन

प्रथम अरक अति-सुपमा, मानव
सदा सुखी सख्या अत्यल्प
नही समस्या आवादी की
युगल-युगल का प्रकृति-प्रकल्प

नही गाव है, नहीं नगर है
करते हे सव जन वनवास
नही भवन है, नहीं रसवती
सहज सिद्ध जेसे सन्यास

नहीं राज्य हे, ना समाज है
व्यक्तिवाद है एकाकार
'राज्यविहीन समाज' मार्क्स की
हुई कल्पना ज्यो साकार

शान्त क्रोध, अभिमान शात हे
माया ओर लोभ है शात
शासन-रहित राज्य वन सकता
जव सवेग-वलय उपशात

साम्यवाद की स्वस्थ कल्पना
मानव का मानस अस्वस्थ
साम्यवाद को सार्थकता दे
सकता है केवल आत्मस्थ

अधिनायकवादी आशय से
दमन चक्र का प्रादुर्भाव
आध्यात्मिक अनुशासन से
अहमिन्द्र व्यवस्था का उद्भाव

नहीं अर्थ है, नहीं दड है
नहीं अपेक्षित है व्यापार
सीमित आवश्यकता, सीमित
इच्छा, सीमित-सा ससार

जीवन की आवश्यकताए
कल्पवृक्ष से होती पूर्ण
नही रोग है, नही चिकित्सा
नही प्राप्त त्रिफला का चूर्ण

इच्छाचारी है स्वतत्र
परतत्र बनाता ग्राम-निवास
स्वर्ण, रजत, मणि, मुक्ता सब है
किन्तु नहीं परिभोग विकास

स्व-स्वामी सबध अकल्पित
नहीं अपेक्षित सेवा-कर्म
नहीं बडप्पन की आकाक्षा
सबका अपना-अपना धर्म



माता और पिता भाई-भगिनी
का समुचित है संबंध
किन्तु सहज जीवन है सबका
नहीं तीव्र है प्रेम प्रबंध

मित्र सखा होते है उनमे
नहीं राग का अनुशय उप्त
नहीं शत्रु हता कोई भी
अभी वैर का अनुशय गुप्त

नाटक, लासक, नृत्य अजन्मा
मानस तृप्त कुतूहल मुक्त
हाथी, बकरी, गाय लब्ध पर
नर पशु है संबंध वियुक्त

सिंह बाघ पर हिंस्र नहीं है
आकृति सोम्य, प्रकृति से शांत
मच्छर खटमल डांस नहीं है
निरुपद्रव वसुधातल कांत

अजगर, सर्प, सरीसृप गण है
पर रहता अपने मे लीन
अभय परस्पर सहज मित्रता
अपनी गति मति मे सब पीन

कलह डमर संघर्ष नहीं है
नहीं शस्त्र का भी निर्माण -
लगता जैसे पुण्य धरा पर
हुआ प्रतिष्ठित नव निर्वाण

कल्पवृक्ष

'चित्र' से मिलता हे आहार
यही हे जीवन का आधार
वस्त्र का कारक वृक्ष 'अनग्न'
देह मे वल्कल हे परिलग्न

'भृग' के पत्र पात्र उपयुक्त
वास हित 'गेहाकार' प्रयुक्त
उष्णता देते 'ज्योतिप-अग'
अलकरणो की कृति 'मणि-अग'

ज्योति विकिरण करते 'दीपाग'
वाद्य कलरव करते 'त्रुटिताग'
माल्यमय पुष्पस्रवण 'चित्राग'
स्रोत मधुरस का प्रवर 'मदाग

भोजन

मधुर शकरा से अनन्तगुण
मिट्टी का रसमय आस्वाद
सरिता के जल की मिठास मे
भी मिलता उसका सवाद

पोपक तत्त्व सघनतम अर्जित
भोजन की मात्रा अतिअल्प
तीन दिवस के अतराल से
होता खाने का सकल्प

वज्रऋपभनाराच सहनन
अत करण नितात पुनीत
तीन पल्य का जीवन लबा
आयुमान अति तर्कातीत



क्रोध अल्पता, लोभ अल्पता
मन की शांति, विधायक भाव
समुचित पोपण, दीर्घ आयु के
ये पाचो शाश्वत अनुभाव

अल्प आयु के हेतु पाच हे
भय, तनाव, सवेग प्रकाम
असतुलित आहार, निपेधक
भावो का उद्भट सग्राम

इन सबसे वे युगल मुक्त हे
वस्तु-जगत् का हे सक्षेप
इसीलिए व्यवहार विमलता
नही कही छलना-आक्षेप

सहज धर्म, मन सहज शात
तन सहज स्वस्थ, सब सहज बना
स्निग्ध काल की महिमा अद्भुत
सभी युगल है एकमना

सहज सिद्धि से वतमान
जीवन पावन, पावन परलोक
मरने पर युगलो की निश्चित
एक मात्र गति निर्जरलोक

पठन-पाठन काव्य भापा
शब्दकोश वितर्कणा
सब तिरोहित है दिवस मे
ज्यो नखत की अपणा

नट नही, नाटक नहीं
प्राकृतिक वातावरण है
सहज तृप्त यथा धरा पर
स्वर्ग का अवतरण हे

सहज जीवन, मरण भी है
सहज चित्तसमाधि से
कभी कोई नहीं मरता
व्याधि-आधि-उपाधि से

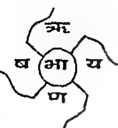
युगल को दे जन्म कुछ ही
मास जीते, यह प्रथा
मौन से अभिव्यक्त होती
युगल जीवन की कथा

सप्त दिवस उत्तानशयी शिशु
करता है अगुष्ठ-निपान
फिर द्वितीय सप्तक म घुटने
के बल चलता है अम्लान

वाणी प्रस्फुट, स्खलित चरण से
चलता, फिर पैरो मे शक्ति
कला कुशलता और सातवे
सप्तक मे यौवन की भक्ति

उनपचास दिन तक करता हे
लालन-पालन युगल उदार
एक छींक या जभाई ले
उड जाता खग पाव पसार

स
र्ग
१



अपने पोरुष से चलता है
नव युवको का जीवन पोत
अपना दीपक अपनी वाती
स्नेहसिक्त अपना उद्योत

परिवर्तन का हेतु काल
हर कोई उससे शासित है
एक रूप ना कोई भी रह
सकता, जिनवर भाषित है

वढा समय-रथ जैसे आगे
चला ह्रास का वैसे चक्र
उन्नति अवनति की यात्रा में
कभी सुलभ पथ, दुर्लभ तक्र

अरो का परिवर्तन

सोरचक्र-गति परिवतन से
युग का होता परिवतन
सुषमा मे माधुर्य न्यूनता
दिवस तीसरे मे भोजन

सुषमा-दुषमा मे किंचित्-सा
हुआ समस्या का आभास
भोजन एकातरित कल्पतरु
नहीं बुझाते पूरी प्यास

दुषमा-सुषमा में रजनी को
प्राप्त हुआ है पहला स्थान
दिवस निशा का चक्र जटिलतम
कौन सका इसको पहचान?

कल्पवृक्ष की क्षमता मे
आया कार्पण्य अकल्पित-सा
विजली कौंध गई, युगलो की
अवश विवश-सी हुई दशा

है उत्कट अनुभाव काल का
अघटित घटना घट जाती
प्रखर चेतना सो जाती है
सुप्त चेतना जग जाती

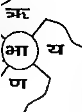
मुक्त रहे जो नित ममता से
जाग उठा उनमें ममकार
कल्पवृक्ष पर लगे जताने
सव अपना अपना अधिकार

स्वत्व-हरण, छीना-झपटी का
अतिक्रमण का वेग वढा
शांति-भग का, मान-भग का
सव पर जेसे नशा चढा

क्या यह सच हे? सच अभाव मे
वन जाता हे विकृत स्वभाव
उपादान पर समय-समय पर
होता व्यक्त निमित्त-प्रभाव

सापेक्ष-सत्य

उपादान ही परम सत्य है
यह एकागी दृष्टिवाद है
यथा परिस्थिति तथा विनिर्मिति
यह भी ऐकान्तिक प्रवाद है



पय मे घृत की सहज अस्मिता
मथन से नवनीत निकलता
व्यजन द्रय-सापेक्ष अकेला
अभिव्यजन के लिए मचलता

दिन मे तारे छिप जाते हे
तम मे हो जाते ज्योतिर्मय
अग्नि अरणि मे विद्यमान पर
घर्षण-शून्य न होती तन्मय

नेतृत्व की खोज

युगल के सम्मुख समस्या
युग वदलता-सा दिखा
प्रथम बार अभाव की स्थिति
लेख यह किसने लिखा?

भूख प्रतिदिन अल्प भोजन
यह अपूर्व अदृष्ट हे
समाधायक की अपेक्षा
अब नया पथ इष्ट हे

मिल रहे जन-जन परस्पर
हो रहा समवाय हे
एक चितन, एक चिता
एक ही अध्याय है

कालकृत सस्कृति समस्या-
वीज यदि वोती नहीं
भूमि चितन-मनन की यह
उर्वरा होती नहीं

कष्ट केवल कष्ट ही हो
मनुज जी सकता नहीं
अग्निताप-अभाव मे
मृद्जनित घट पकता नहीं

कष्ट से उद्भूत है ये
रश्मिया आलोक की
रति तिमिर को जन्म देती
मति विकृत परलोक की

कुलकर व्यवस्था का उदय

सुषमा-दुषमा की समाप्ति का
पार्श्व समय अब बीत रहा
युगल एक परिव्रजन निरत तब
अवर ने अनकहा कहा

चार दत वाला हिमगिरि-सा
श्वेत समुन्नत गज आया
युगल पुरुष को अपने कर से
उठा, शीर्ष पर बिठलाया

पहला वाहन, पहला वाहक
देखा सबने अद्भुत दृश्य
सभी युगल ह पदचारी यह
कौन हस्ति पर चढा अधृष्य?

करिवर दृष्ट, दृष्ट मानव भी
गज आरूढ मनुष्य अदृष्ट
आरोहण हे चरण-चार का
एक विकल्प वितर्क-विमृष्ट



निर्मल वाहन विमल रूप है
नाम विमलवाहन अवदात
विमल हृदय दोनो का देखा
दोनो ने इक नया प्रभात

पूर्वजन्म की पावन स्मृति से
आपस में अनुबन्ध हुआ
अकुश की क्या आवश्यकता
जब हार्दिक सबध हुआ

अधिकृत कल्पवृक्ष पर कोई
कर लेता सहसा अधिकार
अभिभव की अनुभूति प्रखरतम
जागृत ममता का सस्कार

कलह-कुटिलता बढ़ी परस्पर
सोचा गजचारी है ज्येष्ठ
न्याय मिलेगा उससे सबको
वह मति धृति-सम्मति से श्रेष्ठ

यह होगा हम सबका स्वामी
मान्य हमे इसका निर्देश
स्व-स्वामी-सबध आज से
परपरित अभिनव परिवेश

सह चितन कर युगल विमल-
वाहन की सन्निधि मे आए
नई सृष्टि की नई दृष्टि से
खिले सुमन जो अलसाए

समूह प्रार्थना

उच्चासन पर आप विराजित
विमल विमलवाहन है देव।
ऊचाई उपलब्ध हुई हे
अनुपचरित-चरिका स्वयमेव

करें प्रभो। नेतृत्व हमारा
यह हम सबका मानस भाव
अन्तर् का विश्वास मुखर हे
स्वीकृत होगा ही प्रस्ताव

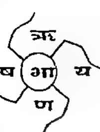
विमलवाहन

सब अपने-अपने नेता ह
फिर क्या आवश्यक नेता?
अपनी मर्यादा अपना अनु-
शासन जन यदि कर लेता

मानव की मति विशद विनिर्मल
उसमे अति विकसित चेतन्य
गति चतुष्क के राजमार्ग मे
मानव का जीवन हे धन्य

युगल

देव। समस्या विकट हुई हे
कितना बदल गया आचार
कल्पवृक्ष भी बदल गए सब
बदल गया मानव-व्यवहार



निज पर शासन जव जव घटता
तव नेता लेता अवतार
वही कुपथ जाने वालो का
कर सकता ह सहज सुधार

विमलवाहन

नियम मान्य हो और नियता
तभी व्यवस्था हो सकती
सूत्र विना मनके माला में
कस सुई पिरा सकती?

नियम, नियता— दोनो से
अनजान युगल, यह कठिनाई
कोई केसे कर सकता
नेतृत्व वताओ तुम भाई?

अनुभव के निझर से वहने
वाला जल यह निर्मल है
सत्य तरगित विविध रूपमय
निश्चल और चलाचल है

सहज नियम से चलने वाली
युगल-अवस्था वदलेगी
विहित नियम के इन्द्रधनुप मे
रूप व्यवस्था का लेगी

युग-परिवर्तन की बेला मे
यह होगा अभिनव उच्छ्वास
चितन-मथन कर वतलाओ
क्या इसमे सबका विश्वास?

मुक्त पवन मे श्वास लिया है
मुक्त गगन मे किया विहार
उस पछी का कैसे होगा
पल भर भी पिजडे से प्यार?

युगल

बात सही है, सोच सही है
हम स्वतत्र जीने वाले
किंतु कलह से व्याकुल, प्रतिपल
शात सुधा पीने वाले

विवश स्ववशता त्याग गहन-गज
अकुश को स्वीकार रहा
मृण्मय भूतल तन्मय बनकर
हरित पटी को धार रहा

मान्य करेंगे नियम, नियता
का मनसा सादर सम्मान
और व्यवस्था का, सुविधा है
दूर सदा हम से अभिमान

नियम-शृखला सुशृखलित जो
वास्तव मे है वही स्वतत्र
अहकार मे पलने वाला
है स्वतत्र भी तो परतत्र

'ओम्-आम्' कहकर अन्तर्मन से
हम सबको अब कर कृतार्थ
शब्द अर्थ की सनिधि पाकर
हो जाता है जैसे सार्थ

स

र्ग

१



नेत्र तीसरा उद्घाटित है
प्रवहमान करुणा का स्रोत
सघन तिमिर का चीर-हरण कर
करना है अभिनव उद्योत

विमलवाहन

पथ-दर्शन के लिए निरतर
प्रस्तुत मेरी सेवाए
सहगामी बनकर फलना है
चलना फिर दाए-बाए

पूरा वातावरण प्रफुल्लित
नव सूर्योदय स्वर्ण विहान
सरजा जैसे नियति-चक्र ने
नई सृष्टि का नया विधान

कुल की सरचना की, कुलकर
बने विमलवाहन विख्यात
सामाजिकता का पहला पग
उठा लिखित या अलिखित ख्यात

एकछत्रता व्यक्तिवाद की
दूर्वा के सिर जैसे बिन्दु
बिदु-बिदु का सघन समुच्चय
बनने को है अविरल सिधु

संविभाग-व्यवस्था

कर कल्पवृक्ष का संविभाग सब बाटे
सुरभित गुलाब का पुष्प भले हो काटे
है अल्प लब्धि फिर भी सब मिलकर खाए
सिद्धान्त परस्परता का अब समझाए

योगलिक जगत् की प्रथम समूह व्यवस्था
वितरण समताकृत सबकी एक अवस्था
हो पक्षपात अज्ञात धर्म कुलकर का
केवल प्रकाश का प्रसर काम दिनकर का

दडनीति का प्रचलन

कुलकर की कृति को सबने शीष चढाया
अधिकार-भावना इन्द्रजाल की माया
जग जाती है इक बार कठिन फिर सोना
उससे बन जाता है अनहोना होना

धीमे-धीमे मानस बदला युगलो का
आया लालच का एक भयानक झोका
पर-वृक्षो पर अधिकार जमाना चाहा
इस लोभ-अग्नि में सब कुछ होता स्वाहा

कुलकर के सम्मुख प्रस्तुत हुई समस्या
है समाधान की खोज महान तपस्या
हो ध्यानमग्न प्रतिकृति का सत्य निहारा
अनुशासन का है दड सशक्त सहारा

उसने युगलो के मृदु-मानस को देखा
खींची नियमन की एक प्रतनु-सी रेखा
'हा! हा! तूने क्या किया दड यह भारी
मुरझा जाएगी अतिक्रमण की क्यारी

हाकार नीति मे निहित नितात अवज्ञा
उससे अनुशासित हुई युगल की प्रज्ञा
सम्मान और अपमान मूल्य सामाजिक
ये व्यक्तिवाद में अर्थहीन सर्वाधिक



शब्दो की शक्ति अमित अवितर्कित मानी
सामाजिक जीवन मे जाती पहचानी
अब तक सीमित व्यवहार सुसीमित भाषा
सब दृष्ट अलक्षित आशा और पिपासा

नैसर्गिकता की इति, अथ हुआ दमन का
हर युगल बना है अब माला का मनका
नव युग का नव जीवन आकस्मिक आया
जैसे निरभ्र अबर मे बादल छाया।

विमल-युगल का स्वर्गवास
प्रतिपल गतिमय काल
अगतिक कोई भी नहीं
जलनिधि की उत्ताल
लहर निदर्शन बन रही

यद्यपि लबी आयु
अवधि अतत अवधि है
रुद्ध प्राणमय वायु
कोशा-प्रजनन का स्थगन

सदा निरामय देह
आमय जन्मा ही नही
दुर्जन मन मे स्नेह
दुर्लभ जेसे जगत मे

शाश्वत योवन रम्य
जरा अभी उपजी नहीं
पर पचत्व अदम्य
समवर्ती चलता रहा

उद्घाटित नव द्वार
पजर मे बैठा विहग
अद्भुत रस साकार
विस्मय नहीं प्रयाण मे

सध्या क्षण मे चन्द्रयशा ने
एक युगल को जन्म दिया
एक पुरुप था, थी इक नारी
युगल-नियति का रूप लिया

त्वरित वृद्धि होती युगलो की
मास पट्क मे युवा बना
काल बदलता, नियम बदलते
कभी बाजरी, कभी चना

पूर्ण हुए छह मास, हुआ तव
विमल-युगल का प्राणविलय
एक छींक के साथ सहज मृति
जुडे हुए है सृष्टि प्रलय

नव किसलय के लिए छोडता
स्थान यथा चिरकालिक पत्र
किसी शीर्प पर अमित काल तक
रहा नही कोई भी छत्र

आया चक्षुष्मान् के
कधो पर दायित्व
कुलकर का आसन मिला
पहला अन्यायित्व



जेसे-जेसे कार्य का
होता है विस्तार
वेसे-वैसे शब्द का
बढता है ससार

अभिनदन सवने किया
पाकर नव नेतृत्व
कुल-सचालन मे दिखा
पितृतुल्य कर्तृत्व

जीवन शैली एक-सी
सहज तोप-सतोप
आकाक्षा न महत्व की
सहज मनोमय कोष

समतल गति होती रही
नही नया उच्छ्वास
जीवन अवधि प्रलम्बतम
छोटा-सा इतिहास

माकार-नीति

आया कुल मे अभिनव प्रभात
दिन-रात चक्र अज्ञात-ज्ञात
उत्तरदायित्व यशस्वी ने
ओढा सानद मनस्वी ने
उत्पल-निर्लेप तपस्वी ने
सकल्प लिए मधु-रस भीने
वर-पुष्प-प्रकर नव अनाघ्रात
कह रहा पवन इक यही बात

युगल की प्रतिपालना
गोपाल बनकर कर रहा है
योग का, सहयोग का
सस्कार सब में भर रहा है

मत्त मद से वन द्विरद ने
व्यर्थ अकुश को किया है
युगल के सवेग ने गति-
वेग आशुग से लिया हे

अतिक्रम हाकार की
सन्नीति का युग कर रहा है
फिर समस्या उभर आई
रस विरस बन झर रहा है

सघन उलझन बन घनाघन
गीत अविरल गा रहा हे
खोज करने जो चला वह
सत्य सतत पा रहा है

स्फुरित चितन इस अगद से
गद नहीं यह साध्य होगा
देय है अब अन्य ओषध
युगल-मानस बाध्य होगा

घोषणा माकार की युग-
चरण बढता आ रहा है
क्षितिज के नेपथ्य से स्वर
गूजता-सा आ रहा है

सर्ग १



अल्प से अपराध मे
हाकार व्यवहृत हो रहा हे
अधिक मे फिर 'मत करो' का
स्वर मनस को धो रहा हे

अधिकतम अपराध मे नय
उभय का व्यवहार होता
नयन-द्वय का ही निमीलन
भूल का मुख-द्वार होता

दमन भी उपचार बनता
मनुज-मन जब सो रहा हे
दड का विप-बीज जन
निज हाथ से ही बो रहा हे

कुलकर वर अभिचन्द्र ने
ले नय-द्वय आधार
शासन-सचालन किया
पुत्र पिता-अनुकार

सम गति से चलता रहा
सरिता सलिल प्रवाह
चाह बिना केसे मिले
कोई नूतन राह

धिक्कार-नीति

शात सलिलनिधि शात ऊर्मिया
आकस्मिक आया तूफान
भाव ओर मानस की गति का
गूढ गूढतम तत्र वितान

अतिक्रमण का दोर चला अति
टूट गया संचित सभाग
कामवीचि से उद्वेलित जन
देता ज्यों लज्जा को त्याग

दमन सरल है, कठिन हृदय का
परिवर्तन, चिरकालिक सत्य
हृत् परिवर्तन एक कल्पना
दड सर्ज सम्मत-सा तथ्य

जैसे-जेसे अतिक्रमण की
घटनाओ का फेला जाल
वैस-वैसे ही मानव ने
ओढ़ी दड-शक्ति की खाल

आवर्तन धिक्कार-नीति का
है प्रसेनजित का अवदान
वना निरकुश पर यह अकुश
शब्द-शक्ति-शासित सज्ञान

नीरव का रव से परिचय ज्यो
प्राणशून्य म सचारित
मौन मृदग मुखर सिकता-कण
दडविधा से सस्कारित

मृदुता कटुता शब्दराशि की
सतत तरगित लहर हुई
प्रिय-अप्रिय भावो से आदो-
लित अमरित या जहर हुई



भाव ओर भापा का सगम
दर्शन मे अव भी अज्ञेय
भाव-अनुप्राणित भापा ही
होती ज्ञाता द्वारा ज्ञेय

नीति त्रय के आलवन से
सचालित शासन का सूत्र
रहा वही मरुदेव चरित-पथ
पिता-तुल्य होता है पुत्र

युग आया अव नाभि-युगल का
मरुदेवा पत्नी का नाम
युगल-व्यवस्था का आलेखन
माग रहा हे पूण विराम

ध्रुव, परिवर्तन दोना सच हे
आत्मा, पुद्गल दोनो सत्य
अनेकान्त के अनुशासन मे
नहीं कही कोइ वमत्य

जलधि शात हे वही तरंगित
जल तरग दोनो सापेक्ष
एक चिरतन एक क्षणिक हे
केवल मोलिक कण निरपेक्ष

केवल ध्रुव केवल परिवर्तन
दोना व्योम-कुसुम सकाश
सहज मृत्तिका मृद्-विकार घट
है विवर्त का नाम विकास

मानव, मानव-विहित व्यवस्था
सब कुछ है परिवर्तनशील
अनुत्तरित है प्रश्न आज भी
अमुक श्लील हे या अश्लील?

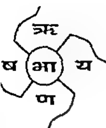
वर्तमान दर्शन समदर्शन
ना चर्चित है अत्र अमुत्र
माता ओर पिता पति-पत्नी
भाई-भगिनी पुत्री-पुत्र

अष्ट रश्मि से सख्याकित हे
परिवारोचित सब सबध
भाई-भगिनी पति-पत्नी का
सहज सर्व अनुमत अनुबध

देश काल के परिवर्तन का
प्रकृति-सिद्ध चलता है चक्र
घास घास से दूध, दूध से दधि,
दधि से बनता हे तक्र

तक्र शक्र को भी दुलभ है
कितना साथक कवि का सूक्त
सत्य सदा दुर्लभ दुर्लभतम
जो न बना आग्रह से मुक्त

सामाजिक विधि-परिवर्तन मे
वे जन हे विस्फारित नेत्र
विप्रकृष्ट इतिहास रहा हे
सीमित जिनका चिन्तन क्षेत्र



वर्तमान का दर्पण लेता
वर्तमान का ही प्रतिविम्ब
ना अतीत जीता हे पुनरपि
नहीं प्राणमय उसका विम्ब

कुलकर युग की सध्या वेला
म हे एक चरण विन्यस्त
उपा काल की स्वर्ण-रश्मि से
चरण दूसरा हे आश्वस्त

हुआ हिमाचल के अचल मे
चचल प्रतनु-प्रतनु हिमपात
नाभि अचचल ध्यानमग्न हो
देख रहा हे नया प्रभात

अवर्तितोऽपि प्रकट प्रवृत्त
न धर्मनाम्ना विदितोऽपि धर्म
पुण्ये युगे प्राप्तमहाभिषेक
स वाछनीयोस्त्यधुनापि लोकै ।

श्रीऋषभायणे यौगलिकयुगनामा
प्रथम सर्ग

सर्ग २

दूसरा सर्ग

ॠषभावतार

सृष्टेरकर्त्ताऽपि चकार सृष्टि-
मात्मस्थितादप्युदगाद् व्यवस्था
प्रजापतिर्वा प्रथितो विधाता
नमोस्तु तस्मै ऋषभाय नित्यम्।



अचल धरातल अचल गगनतल
अचल पवन मे स्पद हुआ
प्रकृति-काव्य के महाकुज में
प्रस्फुट सस्वर छद हुआ

शात निशा क्षण, शात मन स्थिति
दिशा-वलय नि शब्द हुआ
आधी निद्रा आधी जागृति
स्वप्नलोक आरब्ध हुआ

कल्पवृक्ष की छत के नीचे
युगल सुप्त था स्वस्थमना
पश्चिम रजनी मे मरुदेवा
का अतर्मन मुदित बना

पीन स्कन्ध वृषभ का दर्शन
स्वीकृत भार निवाहेगा
हिम पर्वत उत्तुग शिखर पर
गज गौरव बन जाएगा

प्रबल पराक्रम विक्रमशाली
सिह स्वग से उतर रहा
पद्मवासिनी लक्ष्मी का दर्शन
आकर्षण बना रहा

सुरभि-सुमन से गुंफित माला
आलबन बनने आई
अमल धवल ज्योत्स्ना से द्योतित
चद्रकाति अति लहराई

रवि ने रुचि का जाल विछाकर
सघन तमस को ध्वस्त किया
लहराते ध्वज के अचल ने
भावी का सकेत दिया

परिमल रसमय शीतल जलभृत
पूर्णकलश यह अभिनव है
पद्माकर के मधु पराग पर
मधुकर का गुजारव है

क्षीरसिधु की दुग्ध-ऊर्मि का
नृत्य अबोला सस्तव है
आभा से आभासित उज्ज्वल
सुर विमान का वैभव है

तारागण सम अमल प्रभाकुल
रत्नपुज की दिव्य छटा
वर वर्चस् निधूम अग्नि का
दसो दिशाओ मे प्रगटा

मुदित दिशाए प्रमुदित दिग्गज
मोद मूर्त वन छलक उठा
मरुदेवा को नाभिराज ने
देखा सहसा पलक उठा

नाभि

बोलो क्या आई हो इस क्षण
हर्ष तरगित कण-कण मे
कल्पवृक्ष क्या उग आया है
जीवन के नव प्रागण मे?



मरुदेवा

बोली मरुदेवा, हा हा हा
मैने अचरज देखा है
स्वामिन्! मेरी मनस भित्ति पर
स्वप्नविव की लेखा है

पता नहीं क्यों आज अहेतुक
हर्ष-वीचि उत्ताल हुई?
मौन समदर, गगनचुंबिनी
लहरी ज्यों वाचाल हुई

अनुभव को उपलब्ध न वाणी
वाणी अनुभवशून्य सदा
कैसे व्यक्त करू अनुभव को
यह क्षण आता यदा कदा

नाभि

लगता है कुछ अभिनव होगा
जो न हुआ अब तक जग मे
पावन दीप लिए आशा का
रक्त प्रवाहित रग-रग मे

सुस्थिर ध्यानमग्न अनुभव मे
निर्विचार चैतन्य हुआ
अतर की आलोक-रश्मि का
स्पर्श प्राप्त कर धन्य हुआ

मगल मगल मगल मगल
अति मगल होने वाला
सुत जन्मेगा महामहिम नव
सृष्टि-बीज बोने वाला

प्रद्योतन की प्रथम किरण ने
युगल चरण का स्पर्श किया
अधिप्रकाश की शुभ वेला का
श्रेयोमय सकेत दिया

युगल-जन्म

प्रकृति-सिद्ध आहार निरतर
प्रकृति-सिद्ध जीवन-चर्या
सहज प्रसव का हेतु सहज मन
गति-विधि प्रकृति-प्रणय-चर्या

युगल-जन्म ने युग-परिवर्तन
धारा का आभास दिया
पजर मे आवद्ध विहग को
उडने को आकाश दिया

जन्म सदा होते आये है
आज नया कुछ घटित हुआ
दिशाकुमारी के सगम से
तरु-आगण मणि-जटित हुआ

सुरभि-पवन सगीत गा रहा
पल्लव-रव की शहनाई
किशुक कुकुम रूप हो गया
पुष्पो ने ली अगडाई

नाभि और मरुदेवा का मन
पुलकित, रोमाचित तन था
कुलकर की इस परपरा मे
अद्भुत-जनन सुपावन था



नामकरण

नामकरण के क्षण मे मरुदेवा
का सक्षम तर्क रहा
ऋपभ स्वप्न ऋपभाकित वक्षस्
ऋपभ नाम अवितर्क रहा

साधु-साधु एक स्वर मे कह
युगल सभी उल्लसित हुए
ऋपभ नाम का सवोधन पा
किसलय तक उच्छ्वसित हुए

कन्या की अभिधा सुमगला
मगलमय उज्ज्वल वेला
कुलकरवर श्रीनाभिराज के
घर मे आज लगा मेला

शैशव

अवर विशद वितान मनोहर
वसुधा ने मृदु तल्प दिया
पिता गोद वर विश्रामालय
सविता से सकल्प लिया

जीवन-साधन मिले अकृत्रिम
कृत भावी के दर्पण मे
प्रतिविवित हो रहा अमलतम
स्थूल सूक्ष्म के कण-कण मे

अद्भुत रूप हिरण्यकाति तनु
स्वेद-मल का लेश नहीं
आनापान अब्जवत् सुरभित
आकृति पर सक्लेश नहीं

जगी समुत्सुकता युगलो मे
अद्‌भुत शिशु के दर्शन की
सहज अतीन्द्रियज्ञान-रश्मि के
महास्रोत के स्पर्शन की

अल्प समय मे चलना सीखा
ओर वोलना ललित लगा
मृदु मुस्कान निहार, सुमन में
प्रतिस्पर्धा का भाव जगा

मिला अमृत अगुष्ठ-पान मे
अति पोपक आहार वना
फलाहार फिर स्वास्थ्य विधायक
मूल पुष्ट तो पुष्ट तना

कवल इस पृथ्वी पर ही हे
प्राणी का अस्तित्व नही
उत्तरकुरु-आनीत फलो पर
जीवन-यात्रा सफल रही

चचल वालक मन को हरता
मद मदता मे जीता
वयकृत भेद नहीं यदि प्रस्फुट
अर्थशून्य जीवन-गीता

सवयस युगल कुमारो को ले
क्रीडा का प्रारम्भ किया
धूली-धूसर कात देह ने
युगलो का मन मोह लिया

स
र्ग
२



शक्ति-परीक्षण के क्षण मे इक
शिशु ने अगुलि-ग्राह किया
श्वास पवन ने सिकता-कणवत्
दूर क्षेत्र अवगाह दिया

शेशव है केवल देहाश्रित
चितन मे योवन आया
महापुरुप का चरित अलोकिक
होती हे अद्‌भुत माया

यौवन

प्रथम प्रहर का अतिक्रमण कर
सूर्य दुपहरी मे आया
पलक झपकते ही कलियो ने
पूण पुष्प का पद पाया

महामहिम के अग-अग पर
योवन सहसा लहराया
व्यक्त वृक्ष अव्यक्त वीज हे
जीवन हे तरु की छाया

युगल-काल ह चिर योवन का
शेशव की सीमा छोटी
स्निग्ध काल के हाथो मे है
द्रुत-सवर्धन की चोटी

अग पूणता कार्यक्षमता
नयन-युगल मे अरुणाई
दीर्घकाल-स्मृति, मति अति विकसित
फूट रही हे तरुणाई

वलिवर्जित वपु, श्यामलतम कच
लोचन-कुवलय विहस रहे
स्फूर्ति मूर्त, उत्साह मुखरतर
लक्षित यौवन, बिना कहे

अवसर्पिणी काल का प्रभाव—अकाल मृत्यु

अवसर्पण के चरण बढ़े तब
जीवन-रथ की गति बदली
स्निग्ध काल की हानि हो रही
गगा की धारा उथली

तालवृक्ष के नीचे बैठा
युग्मी नव शिशु साथ लिए
भावी को जो जान सके उन
नयनो पर निज हाथ दिए

सूक्ष्म जगत् के घटनाक्रम को
कौन कहा पहचान सका?
पता नहीं अस्पृश्य फलो मे
कौन अपक है, कौन पका?

खेल-खेल मे दोनो ही शिशु
ताल वृक्ष नीचे आए
भोला मानस, परिवर्तन की
लिपि को वे ना पढ पाए

सुई समय की घूमी सहसा
एक तालफल टूट गिरा
वज्राहत सा नर शिशु का सिर
आज हुई हे मौन गिरा



कोमल सिर को क्रूर नियति ने
पल भर मे निष्प्राण किया
मर्माहत-सी शिशु कन्या का
असमय मे बुझ गया दिया

पहली बार मृत्यु का दर्शन
ज्ञात 'मृत्यु का गरल' नहीं
अश्रुत और अदृष्ट कथा की
हृदय-स्पर्शना सरल नही

हिल न सकी वह, बोल सकी ना
मानस चिंतन-शून्य हुआ
प्रतिमा-सी स्थिर स्तब्ध खडी है
जीवन हाय अनन्य हुआ

दूर स्थित मा और पिता का
अनजाने तन सिहर गया
मन मे अनबूझा-सा कपन
जीवन जैसे ठहर गया

आए तालवृक्ष-परिसर मे
देखा, जो न कभी देखा
कहा आख ने किन्तु हृदय पर
खचित रही सशय-रेखा

एक सो रहा, एक खडी है
इक वन मे, इक जीवन मे
एक अवस्था दोनो की है
अतर है तन, चेतन में

पहली घटना किसी पिता के
सम्मुख पुत्र विलीन हुआ
चचल मन भी आज अचचल
अपनी लय मे लीन हुआ

काल मृत्यु से परिचित था युग
असमय-मृत्यु कभी न हुई
प्रश्न रहा होगा असमाहित
बनी मन स्थिति छुईमुई

चलो सुनदा! कहा युगल ने
बोली, केसे जाएग?
भाई निद्रा की मुद्रा मे
फिर न कही मिल पाएगे?

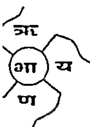
समझाया तब मन्न मृत्यु का
अत करण विदीर्ण हुआ
अधुना परिहित वस्त्र-खड यह
हा! अधुना ही जीर्ण हुआ

सुनदा

पिता! कहा अब मेरा भाइ?
मुझे छोड क्यो चला गया?
एक पुष्प खिलने को आतुर
बिना खिले ही चला गया

मुरझाया सुम नही खिलेगा
तात! मृत्यु का अर्थ यही?
या उन्मेष निमेष-चक्र हे?
क्या यह धारा सदा वही?

सर्ग २



पिता

लहर सिधु मे उठती मिटती
फिर उठती फिर मिट जाती
जन्म-मृत्यु की यही कहानी
जलती-बुझती है वाती

दु ख जन्म देता दर्शन को
वितथ नहीं चिन्तन धारा
दु ख ने ही खोजा सुख का पथ
फिर भी सबको सुख प्यारा

थी अन्त्येप्टि-क्रिया अनजानी
उनके चरण बढे आगे
जुडते ओर टूटते आए
सबधा के ये धागे

मात-पिता द्वारा पोषण पा
बाला वह अब युवति हुई
बीते दिन, विस्मृति भाइ की
चितन मे कुछ प्रगति हुई

इतने मे उस महाकाल ने
अपना पजा फेलाया
हुआ अचिंतित अन्त युगल का
अस्थिर बादल की छाया

यूथभ्प्ट जेसे हरिणी हो
एकल ही वह घूम रही
हुए अगोचर सभी सहारे
आख शून्य को चूम रही

दो का नाम अभय है भाई।
भय का अर्थ अकेला है
द्वंद्व सत्य द्वंद्वात्मक जग मे
गुरु के आगे चेला है

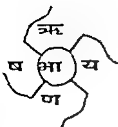
दिशामूढ-सी दशा बनी है
पथ न कोई निश्चित है
किंकर्तव्यमूढता व्यापी
कृत्य-अकृत्य अनिश्चित है

सहजन्मा मृत, किंतु सुनदा
ना जीवित है, ना मृत है
निरालंब है निर्मल आत्मा
जीवन परजन-आश्रित है

युगलो ने देखा आलंबन-
शून्य युवति है मूर्त्त व्यथा
युगल-जगत् के परिवर्तन की
सघन तमोमय चित्रकथा

मिले युगल कुछ, की जिज्ञासा
कौन? कहा से आई हो?
कैसे युगल-व्यवस्था मे तुम
एकाकीपन लाई हो?

कायोत्सर्ग किया वाणी ने
निष्क्रिय-सा स्वरयंत्र हुआ
कंठ रुद्ध, आसू का निर्झर
समाधान का तंत्र हुआ



आश्वासन पा युगल-गणो से
किंचित्-सी आश्वस्त हुई
कही कहानी जीवन-बीती
सालवन विश्वस्त हुई

युगल-गणो द्वारा अभ्यर्थना

कुलकर नाभिदेव चरणो मे
युगलो का गण पहुच गया
किया निवेदन श्रुत-घटना का
अणु-अणु मे साकार दया

बाल-मृत्यु ने किया उपस्थित
सशय युगल-व्यवस्था मे
देखे देव! अकेली बाला
है असहाय अवस्था मे

हो कोई उपचार अनुत्तर
पुनरावर्तन हो न कभी
युगल युगल ही रह पाए हम
अभय शांति साम्राज्य तभी

अनुनय-विनय हमारा प्रभुवर!
बाला आज शरण्य बने
पारसमणि का स्पर्श प्राप्त कर
मिट्टी पुण्य हिरण्य बने

बने ऋषभ की प्रवरा पत्नी
एक नया आयाम खुले
नव्य चित्र का भव्याकन हो
अब कोसुभी रग घुले

नाभि

है सुन्दर प्रस्ताव तुम्हारा
सचमुच मन को भाता हे
गहन अपेक्षा हे चितन की
जव पराग इठलाता हे

विकट समस्या हे भोजन की
ओर वस्त्र भी उलझन है
कल्पवृक्ष के कृपण-भाव से
आशंकित सवका मन है

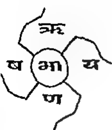
वहुत अल्प आवास वचे हे
युगल-कप्ट की गाथा है
समाधान हे दृप्टि-अगोचर
झुका हुआ यह माथा हे

उछल रही हे युगल-जगत् मे
सघर्पो की चिनगारी
अलसाई-सी मुरझाइ-सी
निज-शासन की फुलवारी

वोलो, जटिल समय मे केसे
इस उलझन को प्रश्रय दे?
इतो व्याघ्र हे, इतस्तटी हे
केसे स्वर को मधु-लय दे?

युगल-गण

समाधान का नाम ऋपभ है
स्वय समाहित सव होगा
ऋपभ-तुल्य शास्ता जन्मा है
सघन तिमिर क्यो अव होगा?



चिता होगी उसी पिता को
ऋषभ नहीं जिसके घर मे
महाभाग! भाग्योदय-रेखा
कितनी प्रबल बनी कर मे

नाभि

स्वस्ति-स्वस्ति, पर एक समस्या
युगल हमारा जीवन है
सहजन्मा है सुमगला यह
देखे, इसका क्या मन है?

सुमगला

पिता! परम सतोष मुझे यदि
इस बाला का मगल हो
उसको पार लगाना होगा
जिसके सम्मुख जगल हो
जिसके पद-तल दल-दल हो

नाभि द्वारा स्वीकृति

युगल-गणो का आग्रह, कुलकर
पर दायित्व नियोजन का
सम्मति-सहमति प्राप्त ऋषभ की
शेष कार्य आयोजन का

पत्नी-द्वय की नव रचना का
सूत्रपात हो जाएगा
बहुपत्नी का वाद असशय
अपने पैर जमाएगा

नवयुग की इस नई-दिशा मे
हमने चरण वढाए है
करता हू मे सादर स्वीकृत
अभ्यर्थन जो लाए है

सफल हुआ आयास युगल का
धन्य सुनदा आज हुई
दैववाद का सूत्र गूढ है
अशरण अव सरताज हुई

अजन्मने जन्म तथाऽमृताय
मृत्युश्च मान्योस्ति स एव पन्था
प्रवर्तकस्तस्य पथो निवृत्ते
मार्गोपदेशी ऋषभ शिवाय।

श्रीऋषभायणे ऋषभावतारनामा
द्वितीय सर्ग

ऋषभ का विवाह

आनद छद से मुक्त सरस कविता है
दस शत किरणो से रोमाचित सविता ह
जीवन शतदल नित आलोकित-पुलकित है
रसमय रसना से होता नहीं प्रमित हे

आनद नाभि के परिसर म, परिकर म
सव्याप्त एक-सा बाहर म, अतर म
बाहर-भीतर का द्वैध अभी अनजाना
ह निराकरण ऋजुता का ताना-बाना

मगल वेला परिणय की सम्मुख आई
परिवार-वृद्धि की यह पहली परछाई
ह युगल-युगल की द्विवचन-निष्ठ अवस्था
अब नए व्याकरण म बहुवचन व्यवस्था

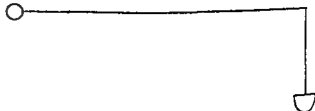
आश्चय कुतूहल उत्सुकता जन-जन मे
प्रश्नो की बिजली कौध रही हे मन मे
केसे यह परिचय शून्य प्रणय-प्रण होगा?
गृह-आगण निश्चित ही समरागण होगा

यह नियम निसर्गज, नव्य परिस्थिति आती
तब-तब आशका बादल बन मडराती
हे सर्दी का प्राभातिक दृश्य कुहासा
जीवित रहती हे सूर्य-रश्मि की आशा

स्वीकृति का आशीर्वाद नाभि से पाया
जीवन-उपवन मे वर वसत गहराया
बहुपत्नी की पद्धति का प्रथम उदय है
विधिकृत सबधों की यह पहली लय है








तीसरा सर्ग

राज्य-व्यवस्था

प्रजापति पालनरक्षणाभ्या
प्रतिष्ठितो य सहज प्रजासु
स शासनाधीशपद बभार
स्वशासनेनानुगतो महात्मा।




ऋषभ का विवाह

आनद छद से मुक्त सरस कविता है
दस शत किरणो से रोमांचित सविता है
जीवन शतदल नित आलोकित-पुलकित है
रसमय रसना से होता नही प्रमित है

आनद नाभि के परिसर मे, परिकर मे
सव्याप्त एक-सा वाहर म, अतर मे
वाहर-भीतर का द्वैध अभी अनजाना
हे निराकरण ऋजुता का ताना-वाना

मगल वेला परिणय की सम्मुख आई
परिवार-वृद्धि की यह पहली परछाई
हे युगल-युगल की द्विवचन-निष्ठ अवस्था
अव नए व्याकरण मे वहुवचन व्यवस्था

आश्चय कुतूहल उत्सुकता जन-जन मे
प्रश्नो की विजली कोंध रही हे मन मे
केसे यह परिचय शून्य प्रणय-प्रण होगा?
गृह-आगण निश्चित ही समरागण होगा

यह नियम निसर्गज नव्य परिस्थिति आत
तव-तव आशका वादल वन मडराती
हे सर्दी का प्राभातिक दृश्य कुहासा
जीवित रहती है सूर्य-रश्मि की आशा

स्वीकृति का आशीर्वाद नाभि से पाया
जीवन-उपवन मे वर वसत गहराया
वहुपत्नी की पद्धति का प्रथम उदय है
विधिकृत सवधो की यह पहली लय हे



मडप की रचना नहीं
न च वेदी का नाम
नही साक्ष्य हे अग्नि का
सब कुछ अभी अनाम

मन्त्रोच्चारक है नहीं
रचा गया ना मन्त्र
केवल पाणिग्रहण ही
हे विवाह का तन्त्र

लिखा गया समुदाय का
एक नया अध्याय
युग-युग की इति पर हुआ
स्थापित नव आम्नाय

मन से मन का मिलन ही
हे वास्तविक विवाह
सामाजिक अब बन रहा
जीवन एक प्रवाह

लो चलो चले हम आज नया कुछ होगा
इन दो कन्याओ का पति इक नर होगा
हे अमित कुतूहल युगल युगल के मन मे
यह अद्भुत घटना घटित युगल जीवन मे

एकत्र युगल-समवाय प्रबल जिज्ञासा
सभृत भवाबुधि फिर भी मानव प्यासा
श्रीनाभि ऋषभ परिकर-परिवृत हो आए
सुरतरु पल्लव ने मगल गीत सुनाए

उत्सुक नयनो मे द्रुत प्रतिबिंबित वाणी
श्रीनाभि नाभि से उत्थित वर कल्याणी
स्वीकृत हो, इस कन्या को ऋषभ वरेगा
नारी जीवन का नव सम्मान करेगा

हा हत! हत! यह आवश्यक आवश्यक
परिवर्तन क्षण के हम है पश्यक पश्यक
यह भूमी शुष्क जलधर-जल अभिसिचन हो
इस निर्जन जन का मगलमय जीवन हो

सपत्र पाणि से ग्रहण पाणि का पावन
जैसा बरसा हो रिमझिम-रिमझिम सावन
अभिनव युग का विन्यास ऋषभ के द्वारा
वहु बहु आयामी है जीवन की धारा

अति निर्मल वातावरण विमलता मन की
आवश्यकता हे सीमिततम जीवन की
है सुखद दीघतम कालावधि आयुष की
कर रहे ऋषभ अनुभूति अनाम वपुष की

स्वप्नों का मानव से सबध पुरातन
निद्रा मे जागृत होता अवचेतन मन
रोमाचित पुलकित सुमगला तब आई
जब ऋषभ ले रहे जागृति की अगडाई

बोली, मैने देखी स्वप्नो की माला
इस दिव्य निशा मे पिया अमृत का प्याला
उज्ज्वल भविष्य है देवि! सुपुत्र तुम्हारा
सम्राट बनेगा कुलकर-कुल ध्रुवतारा



पावन वेला मे हुआ सुजन्म युगल का
उल्लास प्रकृति के कण-कण मे है झलका
दो नए शब्द फिर शब्दकोश ने पाए
'दादा-पोता' सबध जगत् मे आए

अभिधान पुत्र का भरत सुभाग्य विधाता
ब्राह्मी कन्या का नाम नवोदय दाता
अम्लान सुनदा बनी युगल की माता
सुत बाहुबली बल मूर्त, सुदरी-भ्राता

सतति-वर्धन का समयचक्र अब घूमा
श्रीसुमगला ने चित्र-शिखर वर चूमा
अह! अर्ध शतक युगलो की मा बन पाई
आमोद-लता ऋषभागण मे लहराई

राजतत्र का सूत्रपात

हो क्षुब्ध परिस्थिति से उद्वेलित मन में
श्रीऋषभ पास आए मिल युगल विजन मे
बोले, आश्वासन एकमात्र तुम स्वामी!
है जटिल समस्या देखो अन्तर्यामी!

सुषमा में परिवतन की अविरल धारा
नीति त्रय का अतिवर्तन बना किनारा
आवेश क्रोध का, कलह लोभ की छाया
अपशब्द सभी ने आगे चरण बढाया

ये रूठ रहे है कल्पवृक्ष भी सारे
भूखो को दिन मे दीख रहे है तारे
भोजन का अन्य विकल्प खोजने आए
प्रभुवर-चरणो मे समाधान मिल जाए

यह आर्त्तस्वर शर से अतिवेधक होता
हल मे वेधकता वीज कृषक तब वोता
सस्पर्श हृदय का पा युगलों की भाषा
साकार वनी सहचर अन्तर् की आशा

अतर्मानस करुणा से सजल ऋषभ का
उत्तरदायित्व स्वय सजात वृषभ का
स्मृति पूर्वजन्म की, विकसित अतर्दर्शन
सप्राप्त जन्मना अवधि-चेतना-स्पर्शन

राजा आवश्यक यह सक्रम की वेला
होगा उससे फिर आयोजित नव मेला
यह कालखड ह विधि-अतिवर्तनकारी
शासक-अनुशासन से हो आज्ञाकारी

वन राजा सवका सकट दूर करो हे!
सकट-मोचन! जन-जन की पीर हरो हे!
हो एक मात्र तुम शासन के अधिकारी
तव तुल्य अपर जन कौन यहा अवतारी?

जाओ जाओ तुम कुलकर नाभि शरण मे
वे देगे राजा उनके चरण-चरण मे
दो राजा हम सव अर्थी वन आए है
प्रश्नो के उत्तर तुम से ही पाए है

हा भवतु-भवतु राजा वर ऋषभ तुम्हारा
सताप हरो पा निर्मल जल की धारा
आह्लादित प्रमुदित युगल उछलते आए
तव पेर धरा पर मुश्किल से टिक पाए

स
र्ग
२



प्रभु! आज क्षितिज पर नव सूर्योदय होगा
इन हाथो से अभिषेक नृपति का होगा
लाए है सुर-सरिता का पावन पानी
है तुम से कोई बात नहीं अनजानी

मध्यस्थ ओर तुष्णीक ऋषभ की मुद्रा
दस अगुलियो मे सहज भाव की मुद्रा
सुकुमार चरण अभिषेक पाणि-पल्लव ने
निष्पन्न किया आभा-लालित आर्जव ने

आकुलता ने आश्वासन का वर पाया
वह आश्वासन ही फिर राजा कहलाया
होती स्वतन्त्रता अपनी सबको प्यारी
पर जठर-वेदना से मुरझी फुलवारी

यदि कल्पवृक्ष कार्पण्य नहीं दिखलाते
मानव-मानव यदि बाट-बाट कर खाते
तो राजतत्र बल से आरोपित शासन
न बिछा पाता मानव के सिर पर आसन

मानव-मानव मे स्मृति-मति की तरतमता
आवेश ओर आचार-विचार विषमता
इस सहज विषमता ने ही दिया निमत्रण
अस्त्रो-शस्त्रो को दड-शक्ति को क्षण-क्षण

राज्य-व्यवस्था

जो सबकी चिता करता वह शासन है
गुरुतर दायित्व समर्पित यह जीवन है
है प्रथम अपेक्षा भोजन-पान व्यवस्था
सुधरे युगलो की दैहिक-मनस अवस्था

यह अतिक्रमण की घटना तभी रुकेगी
शासन सत्ता भूखो को भोजन देगी
हो ध्यान-मग्न गहरे-गहरे मे देखा
सहसा कोंधी नभ मे बिजली की लेखा

फल-पत्र-मूल आहार विकल्प बनेगा
उत्पन्न सहज शश्यक भी उदर भरेगा
यह मर्म अशन का कुछ युगलो ने पाया
संदेश ऋषभ का दूर-दूर पहुचाया

आवास-समस्या को कैसे सुलझाये?
अवर में कैसे वितत वितान बिछाए?
अन्वेषण-अनुसधान निरत थे स्वामी
इतने मे उतरा एक गगन-पथगामी

ये द्वीप और जलराशि असख्य अगम है
अनगिन आकाशी सुरसरिता सगम है
इस अलख जगत म हम ह नही अकेले
धरती-धरती पर लगे हुए ह मेले

सौधर्म लोक का अधिपति मे हू स्वामी।
श्री चरणो में आगत सेवा का कामी
मानव की भूमी से सबध पुराना
रहता है पुनरपि पुनरपि आना-जाना

हे प्रभु-ललाट पर अकित चिन्तन-रेखा
चितन मे चिता को इठलाते देखा
आवास समस्या को क्षण में सुलझाऊ
नगरी की रचना कर कृतार्थ बन जाऊ



सहयोग परस्पर है प्राणी-प्राणी मे
उसकी प्रतिभा प्रस्फुट वाणी-वाणी मे
केवल इंगित की मानवप्रवर! प्रतीक्षा
मानव सस्कृति की होगी मजुल दीक्षा

देवेन्द्र! दिव्य सान्निध्य मनुज ने पाया
सापेक्ष जगत् का गीत गगन ने गाया
हे माधव! दिव्य अनुभाव सामने आए
इस संधि-काल को इच्छित तट मिल जाए

हम धन्य प्राप्त निर्देश प्रणत मानस है
नव कल्पना करने मे सुर गण को रस है
सुरपति ने धनपति को तत्काल बुलाया
नगरी रचना का मत्र-मर्म समझाया

सुर शक्ति अमाप्य अगम्य कल्पनाचारी
निर्माण कला-कौशल अनुपम अविकारी
प्रासाद-सदन-गृहपक्ति यथाविधि पथ है
छत नीचे रहना युगल-जगत् का अथ है

सपन्न कार्य कर हृष्ट-पुष्ट हो आया
प्रभुवर चरणो मे सादर शीश झुकाया
स्वामिन्! निर्मित प्रासाद कृतार्थ करो तुम
इस अवितथ पथ पर पावन चरण धरो तुम

तरुवासी जग का सप्रवेश नगरी म
मानो सागर का सन्निवेश गगरी मे
जाना युगलो ने जो आवृत वह घर है
छत के नीचे भूमी, ऊपर अवर है

आहार और आवास युगल ने पाया
सविकल्प जगत की माया तरु की छाया
अविपक्व अ ा अजीर्ण प्रथम यह आमय
केसे खाए पथ-दर्शन दो करुणामय।

मर्दन कर कर से अन्न अनामय खाओ
पाचनतन्त्री के तारों को सहलाओ
निर्देश शिरोधृत फिर भी वही समस्या
परिवर्तन की ह माग कठोर तपस्या

तुम करो पत्र-पुट निर्मित, जल आप्लावित
कर की ऊष्मा से घिस डालो, हो आर्द्रत
वह भीगा शस्य सुपाच्य सुरम्य वनेगा
है शक्तियुक्त फिर भी मृदुभाव वरेगा

भोजन था मात्रा मे अति अल्प मृदुलतम
है अन्न कठिन, मात्रा भी विपुल-विपुलतम
जलसिक्त, धूप मे तप्त अन्न भी खाया
फिर भी अजीर्ण का दोप नहीं मिट पाया

स्मृति कल्पवृक्ष की वार-वार गहराती
भोजन की चिता किंचित् नहीं सताती
तव जीर्ण और अजीर्ण भेद अनजाना
यह वदली स्थितिया का है ताना-वाना

आदोलित मन की गति-मति विचलित होती
पर प्रकृति सीप मे जलकण वनता मोती
आकस्मिक घटना घटित हुई जगल मे
चमकी विजली-सी तरु-तरु क अचल मे

सर्ग ३



देखा युगलो ने तेजस का अर्पण है
अभिनव अदृष्ट यह भावी का दर्पण हे
उत्सुक हो छूने आगे हाथ बढाए
दव-अनल-दाह से अलसाए झुलसाए

वे दौडे-दोडे पास ऋषभ के आए
प्रभु! क्या आया ह, हम कुछ समझ न पाए
वह मोहक हे छूने को जी ललचाता
छूने वाले को निर्दय हाय! जलाता

आत्मस्थ ऋषभ ने हो ध्यानस्थ निहारा
यह चढा हुआ हे अग्नि तत्त्व का पारा
एकात स्निग्ध एकात रूक्ष जब होता
तब नहीं अग्नि का उदय कहीं भी होता

यह काल स्निग्ध-सक्रामित रूक्ष हुआ हे
हा, वेश्वानर का आविर्भाव हुआ ह
बोले ऋषभेश्वर इसमे अन्न पकाओ
फिर पक्व अन्न को चबा-चबा कर खाओ

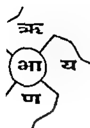
कर शिराधार्य निर्देश गए फिर वन मे
प्रभु की आज्ञा ही सर्वोपरि जीवन म
ला अन्न दवानल की ज्वाला मे डाला
कब धूलिपुज मे भरता जल से प्याला

सब अन्न हो गया स्वाहा झट फिर आए
प्रभुवर चरणो मे श्रद्धा-कुसुम चढाए
बोले, वह भूखा सब कुछ खा जाता है
जो गया मध्य वह लोट नही आता है

अज्ञान हत! अज्ञान सकल दुःख देता
अविकल दुःखो के अड-बीज को सेता
अब जीवन यात्रा की विधि को सब जाने
अपना-अपना कर्तव्य सभी पहचाने

अज्ञानमूला सकला समस्या
तासा समाधानमकारि येन
स पुण्यचेता ऋषभ समेषा-
मज्ञाननाशाय सदा शिवाय।।

श्रीऋषभायणे राज्यव्यवस्थानामा
तृतीय सर्ग



कुभकार के शिल्प का
हुआ प्रवर विन्यास
आधेयक आधार का
वेयाकरण विकास

अन्न पात्र मे डालकर
रखो अग्नि के पास
ताप-पक्व खाओ सहज
ले अजीर्ण सन्यास

आदि विदु पक्वान्न का
प्रथित हुआ आवाल
कभी मोन का आचरण
कभी काल वाचाल

शिल्प ओर कर्म का विकास

इच्छा से इच्छा बढती हे
इच्छा का अपना हे चक्र
दूध जन्म देता है दधि को
दधि से फिर बनता है तक्र

आवश्यकता, आवश्यकता
नही अकेली का अस्तित्व
कडी-कडी से होता निर्मित
अयस-शृखला का व्यक्तित्व

हर प्रवृत्ति के पीछे-पीछे
चलती है अवधूत प्रवृत्ति
मन की चचलता के पीछे
नइ-नई होती है वृत्ति

कुभशिल्प के लिए अपेक्षित
लोहकार का शिल्प निकाम
लोहशिल्प के लिए जरूरी
होता हे वढई का काम

क्रम अक्रम—दोनो चलते हे
क्रम से होता है कुछ कार्य
कुछ छलाग भर कर होता है
अक्रम वन जाता व्यवहार्य

मिले अतीन्द्रिय ज्ञानी जिसको
वह युग हो जाता है धन्य
आज ऋषभ की ज्ञान-रश्मि से
जागृत है युग का चैतन्य

कुभकार की श्रेणी न
आहार-पेय के पात्र दिए
लोहकार की श्रेणी ने
अयजात कुदाली-दात्र दिए

ओर स्थपति की श्रणी ने
गृह-रचना का सकल्प लिया
भोगभूमि को कर्मभूमि का
नव निर्मित परिधान दिया

ततुवाय की श्रेणी ने
आच्छादनकारी वस्त्र दिए
क्षौरकर्म की श्रेणी ने
नख-कुतल के सस्कार किए





पाच श्रेणियो की रचना से
शिशु-समाज को प्राण मिला
कर्मभूमि के कोमल किसलय
को आतप से त्राण मिला

हल से कर्पण हुआ भूमि का
कृष्टभूमि मे बोया बीज
बढी फसल को देख कृषक ने
पूछा मन से यह क्या चीज?

काटा, डाला खलिहानो म
बैल लगे खाने तव धान्य
मुख-वधनी से मुह को वाधो
यह निर्देश हुआ सम्मान्य

रहे सदा अनभिज्ञ कर्म से
पग-पग पर पथ-दशन इप्ट
बाधा मुह खोला न बैल का
वधन-मोचन कभी न दृप्ट

खाना छोड दिया वलो ने
नई समस्या का प्रस्तार
सरल नहीं ह निर्मित करना
नव मानव या नव ससार

आवश्यक हो तव ही वाधो
फिर खोलो खाएग वेल
कठिन कार्य भी युक्ति साध्य हे
उदाहरण मक्खन या तल

भूमि ऊर्वरा उत्पादन की
क्षमता खाद बिना अस्ताध
जलधर बरसा समुचित सयत
छाह मुदिर की कभी निदाघ

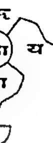
उपजा शस्य मिले जन-जन को
नव आयाम खुला व्यवसाय
उन्नत कृषि उन्नति देती है
उससे ही उन्नत समुदाय

अर्जन का हे चरण दूसरा
रक्षण, रक्षक-श्रेणि तदर्थ
कृषि ने मपि को, मपि ने असि को
जन्म दिया अभिवाछित अर्थ

असि-मषी-कृषि के परिशिक्षण
से द्रुत दक्ष समाज हुआ
पहले जो न कभी होता था
वह परिचालित आज हुआ

स्फुरित हुआ चितन मन मे
आवश्यक है विद्या की वृद्धि
विद्या के पीछे चलती हे
सिद्धि ऋद्धि कमनीय समृद्धि

सामाजिक उन्नति-विकास का
भाषा है पहला सोपान
भाषा के आलवन से ही
चिरजीवी होता विज्ञान



वाङ्मय की शिक्षा विकसित हो
शब्द-सिद्धि, लय का माधुर्य
अलकरण, यह त्रिपद समन्वित
वनता वाङ्मय का वैडूर्य

विद्या का विकास

भरत' शब्द का शास्त्र पढो तुम
शब्द-सिद्धि का द्वार खुले
छन्दशास्त्र हो आत्मसात तव
सिता दूध मे सहज घुले

पढो पुत्रियो' कर्मभूमि म
विद्या का होगा सम्मान
विद्या कामदुहा धेनू है
कल्पवृक्ष का नव प्रस्थान

उचित समय मे उचित यत्न ही
उससे होगा जीवन सार्थ
बीज ऊर्वरा मे जो वोया
स्वय बनेगा वह परमार्थ

अक्षर की गागर मे सागर
भरने का पावन सकल्प
वाङ्मय-सरिता के प्रवाह का
एकमात्र हे लिपि प्रकल्प

वर दक्षिण कर से ब्राह्मी को
लिपि-न्यास की शिक्षा दी
ओर सुन्दरी को सख्या की
वाए कर से दीक्षा दी

लिपि-गणित की शिक्षा में
नारी को पहला स्थान मिला
कोमलतम अन्तर मे कोई
परिमल परिवृत पुष्प खिला

नारी को अधिकार नहीं है
शिक्षा का, यह भ्रान्ति पली
ऋषभचरित की विस्मृति से ही
मिथ्यामति विष-वेल फली

पशु-पक्षी शिक्षित हो सकते
फिर नारी की कौन कथा?
दीर्घकाल अज्ञान तमस की
झेली उसने मौन व्यथा

पतला है आवरण, वही जन
शिक्षा का हे अधिकारी
जिसे लब्ध मस्तिष्क प्रवरतम
फिर वह नर हो या नारी

बाहुबली को मानव-मणि-पशु-
लक्षण का सज्ञान दिया
विद्या वैभव के दीवट पर
ज्योतिदीप सधान किया

लघुतम बीज उप्त ऊर्वरा
मे शतशाखी बन जाता
सागर से अनुदान प्राप्त कर
जलधर बनता जलदाता

य

वन्धुद्वय न, भगिनीद्वय ने
विद्या का विस्तार किया
कर्मभूमि के मनुपुत्रो को
जीवन का आधार दिया

परिवार-सस्था का सजीवन
मम माता, मम पिता सहोदर
मेरी पत्नी, मेरा पुत्र
मेरा घर ह, मेरा धन ह
सघन हुआ ममता का सूत्र

ममता ने परिवार नाम की
सस्था को आकार दिया
ममता ही परिवार, उसी ने
क्रूर वृत्ति का विलय किया

वढे घरण परिणय के आगे
ओर लगा वढन परिवार
सामाजिक गति मे विवाह की
सस्था का अनुपम आधार

शिक्षा से शिक्षित दीक्षा से
दीक्षित, दक्ष बना जनवर्ग
शिक्षा-दीक्षा-शून्य मनुज पशु
शिक्षा ह धरती का स्वर्ग

जन-अनुकपा से अनुकपित
मानस पुण्य उदात्त उदार
नेता का कर्त्तव्य-वोध ले
किया ऋषभ ने युग-उपकार

अपना घर, अपनी कृषिभूमि
अपना वन, अपना उद्यान
मर्यादा में निश्चित सब जन
प्राप्त हुआ है असि को म्यान

आत्मा का शासन चलता तब
दडशक्ति हो जाती व्यर्थ
उच्छृखलता में समझाती
जनता को डडे का अर्थ

शस्य-शस्य श्यामल खेतो का
सरस इक्षुवाटो का व्रात
गोकुल मे गो रभाने की
ध्वनि होती थी साय प्रात

हेय और आदेय वस्तु का
बोध ऋषभ स सम्यक् लभ्य
कर्मभूमि के प्रथम चरण में
सामाजिक जीवन आरब्ध

एकाएक लगा झटका जब
कल्पवृक्ष ने खीचा हाथ
परावलब की प्रवचना यह
स्वावलब ही देता साथ

अब क्या होगा? भय से आकुल
कुलकर का सारा परिवार
भूख-ताप से अधिक भयकर
हत! भूख के भय का तार

य

आश्वासन का बोल मिला तब
डरो न, डरना मरना तुल्य
कर्मभूमि का प्राण कर्म है
आंको इन हाथों का मूल्य

इस अमूल्य वाणी ने फूंका
अभय और पौरुष का मंत्र
हाथ और आजीव मध्य में
आस्थापित जीवन का तंत्र

उसका फल, पहना धरती ने
प्रवर हरित शाटी परिधान
अतिक्रांत भय आज भूख का
सबके होठों पर मुस्कान

राज्य-व्यवस्था

आरक्षक श्रेणी की अभिधा
'उग्र', सुरक्षा का अधिभार
संग्रह-आग्रह विग्रह सारे
लेते समुदय में आकार

राज्य-व्यवस्था में सहयोगी
श्रेणी उसकी संज्ञा 'भोज'
मंत्र-मंत्रणा से ही होती
संचालन-विधियों की खोज

सबया सम अधिकार प्राप्त जन
श्रेणी प्रज्ञापित 'राजन्य'
बनी विकेंद्रित शासन-पद्धति
गगनखंड में ज्यों पर्जन्य

शेष सभी 'क्षत्रिय' कहलाए
हुआ सुनिश्चित जन-व्यवहार
शून्य व्यवस्था मे लगता है
विकृत विचारो का अबार

स्रष्टा धाता और विधाता
सब कुछ, वचन परम आदेय
जो आजीव-उपाय सुझाता
वही पुरुष होता है प्रेय

जनहित-साधन मे न निरत है
केवल ढोता पद का भार
वह क्या राजा? वह क्या नेता?
उससे पीडित है ससार

जनता से अधिकार प्राप्त कर
नहीं कभी करता उपकार
प्रथम वर्ण का लोप हो गया
और हो गया द्वित्व ककार

छोटा मडल, छोटी सीमा
नेता मे करुणा का सिन्धु
सागर भिन्न नहीं ह मुझ से
अनुभव करता है हर बिन्दु

राजा और प्रजा का सुखकर
स्थापित प्रथम बार सबध
नाना रुचि, नाना चितन का
एकसूत्र मे रचित निबध

लवा जीवन, लवी आयु
हुई विपुल जनसख्या वृद्धि
श्रम कौशल सहयोग समर्जित
वढी चतुर्दिक् ऋद्धि-समृद्धि

'निज पर शासन फिर अनुशासन'
शासन का यह मौलिक मत्र
अपने शासन से शासित था
स्वय ऋषभ का जीवन-तत्र

मनुज परिस्थिति की कठपुतली
यह एकात परिस्थितिवाद
जैसी स्थिति वैसा बनता है
मूल नहीं, कवल अनुवाद

कर्म-उदय से सचालित है
मानव मान्य कर्म का वाद
जैसा कृत वैसा बनता है
जैसा रस है वैसा स्वाद

काल ओर स्वभाव, नियति, मति
कर्म, परिस्थिति, सव सापेक्ष
अनेकात का यह दर्शन है
मूल तत्त्व केवल निरपेक्ष

युगल कर्म से बधे हुए थे
फिर भी उनका मोह प्रशात
काल रूक्ष वैयक्तिक जीवन
कर्मपाक रहता विश्रात

काल हुआ है स्निग्ध-रूक्ष अब
सामाजिक जीवन का व्यास
क्रोध, लोभ के आवेश-क्षण
करते मानो पूर्वाभ्यास

मर्यादा के अतिक्रमण का
उपादान वैयक्तिक मोह
है निमित्त परिस्थिति, उससे
कल्लोलित होता विद्रोह

आवेशों का शैशव, वचपन
की वेला मे है अतिचार
बढे नहीं, इसका चितन हो
वर्तमान का हो प्रतिकार

लज्जा के अनुरूप प्रवर्तित
होता समुचित दड-विधान
युग का अपना-अपना मानस
दड स्वय मानस-विज्ञान

लज्जा के उत्कर्ष काल मे
'परिभाषित' का किया प्रयोग
'यहीं बैठ जाओ' शासक का
क्रोधपूर्ण वाचिक अभियोग

तारतम्य है नियम प्रकृति का
लज्जा का किंचित् अपकर्ष
दड 'मडलीवध' प्रयोजित
हुआ क्रमिक गृह-वध प्रकर्ष

लवा जीवन, लवी आयु
हुई विपुल जनसख्या वृद्धि
श्रम कोशल सहयोग समजित
वढी चतुर्दिक् ऋद्धि-समृद्धि

'निज पर शासन फिर अनुशासन
शासन का यह मोलिक म त्र
अपने शासन से शासित था
स्वय ऋषभ का जीवन-तत्र

मनुज परिस्थिति की कठपुतली
यह एकात परिस्थितिवाद
जेसी स्थिति वेसा वनता ह
मूल नही केवल अनुवाद

कर्म-उदय से सचालित है
मानव, मान्य कर्म का वाद
जेसा कृत वेसा वनता है
जेसा रस है वैसा स्वाद

काल और स्वभाव, नियति, मति
कर्म, परिस्थिति, सव सापेक्ष
अनेकात का यह दर्शन है
मूल तत्त्व केवल निरपेक्ष

युगल कर्म से वधे हुए थे
फिर भी उनका मोह प्रशात
काल रूक्ष वैयक्तिक जीवन
कर्मपाक रहता विश्रात

रस-संग्रह रस के निपान का
प्राप्त ऋषभ से सविधि निदेश
जन-जन मुख 'इक्ष्वाकु' नाम वर
सहज प्रतिष्ठित वंश-निवेश

अपर नाम 'काश्यप तेजस्वी
ऋषभ आदि-काश्यप सुप्रसिद्ध
महापुरुष का आलंबन पा
बनता वंश-वितान समृद्ध

आदिपुरुष की गुण-गरिमा से
गौरवमंडित सकल समाज
प्रमुदित विकसित सबके सिर पर
है फूलों का ताज

समाजस्य विकासकार्ये
समेषामुदयाय वृत्ता
श्रीऋषभ स भूयाद्
शश्वत्।

सर्ग

स
र्ग
४

य

निर्धारित सीमा से वाहर
जा न सके, यह दड द्वितीय
नजरबद घर मे हो जाता
जो पाता था दड तृतीय

अतर का आवेश वढा तव
हुआ दड का नया प्रकार
अव तक था वाचिक, अव कायिक
देह-निपीडक दड-प्रहार

ही से धी अनुशासित होती
श्री वढती हे अपने आप
केवल वोद्धिक सवर्धन से
वढता है मानस-सताप

सीमित शासन, अल्प अतिक्रम
अल्प-दड, तनुतर विक्षेप
ऋपभराज्य की यह महिमा ह
नहीं कही कोई आक्षेप

इक्ष्वाकुवश स्थापना

सरस भूमि रस का आवर्पण
कण-कण मे सभरित मिठास
मनस मधुरिमा से आपूरित
गगन-धरा-व्यापी उल्लास

मधुर प्रकृति मे काम्य मधुरतम
इक्षुवाट पद-पद पर दृश्य
सहज स्वय अनुशासित जन म
इक्षुदड ही केवल स्पृश्य

रस-संग्रह रस के निपान का
प्राप्त ऋषभ से सविधि निदेश
जन-जन मुख 'इक्ष्वाकु' नाम वर
सहज प्रतिष्ठित वंश-निवेश

अपर नाम 'काश्यप' तेजस्वी
ऋषभ आदि-काश्यप सुप्रसिद्ध
महापुरुष का आलंबन पा
बनता वंश-वितान समृद्ध

आदिपुरुष की गुण-गरिमा से
गौरवमंडित सकल समाज
प्रमुदित विकसित सबके सिर पर
शोभित है फूलों का ताज

मतिः समाजस्य विकासकार्ये
धृतिः समेयामुदयाय वृत्ता
आदीश्वरः श्रीऋषभः स भूयाद्
मतेर्धृतेरभ्युदयाय शश्वत्।

श्रीऋषभायणे समाजरचनानामा
चतुर्थः सर्गः

स
र्ग
४

पाचवा सर्ग

भरत-राज्याभिषेक

सदार्जव वाङ्मनसोस्तनोश्च
नैसर्गिको धर्म उदात्तभाव
धर्मस्य सर्गो ह्रुदिते कषाये
सजीवन जीवनहेतवेऽसौ।

वसत-उत्सव

वन मे मानव मेला हे
नभ मे सूर्य अकेला हे
परिमल मधुसारथि का मत्र
विरचित मदनोत्सव का तत्र

सुरभित उपवन का हर कोना
विहसित पुष्प पराग
राग झाकता पूर्ण युवा वन
मीलितनयन विराग
आया मधुमय वर मधुमास
कण-कण मुखर वसत विलास

लता मालती के मडप मे
मधुकर का गुजार
कोकिल का कलकठ काकली
मजुलतम उपहार
ऊर्मिल मद-मद पवमान
सबके होठो पर मुस्कान

उद्योतित खद्योत चमक से
तरु का किसलय-पत्र
झिगुर की ध्वनि से अभिकपित
बीता रजनी-सत्र
बनता है अतीत इतिहास
केवल वर्तमान विश्वास

ऋ
आ य
ण

पुष्प-चयन करती बालाए
योगासन का दृश्य
युवकों की पदरज से उपवन
चप्पा चप्पा स्पृश्य
सुरपथ रवियुत मुदिर-विहीन
फिर भी भूतल सम्मुख दीन

अलकरण आभूषण मनहर
पुष्प विनिर्मित सर्व
सुन्दरता मृदुता सौरभ के
लोकार्पण का पर्व
प्रस्फुट प्रकृति प्रसन्न प्रसून
दाता कभी न होता न्यून

तरु शाखा का लबन बनता
दोला का आनद
मिला भ्रमर को जैसे अनुपम
सुमनस का मकरद
तरु-तरु तरुणीफल आभास
तरुणों के स्वर म उपहास

पुष्पाभरण विभूषित भास्वर
आदीश्वर सस्फूर्त
पुष्पवासगृह मे शोभित है
पुष्पमास ज्यों मूर्त्त
देखा लीला निरत समाज
मुखरित अतर की आवाज

सुख की सरिता मे सारे जन
है आकठ निमग्न
नव रस मे शृगार प्रथम रस
रज कण पद सलग्न
पवनेरित पर्वो मे लास्य
प्रस्फुट पुण्य-प्रकर मे हास्य

मद-मद समीरण सुरभित
कर-कर विटपि-स्पर्श
आगे बढता लगता तरु को
इष्ट वियोग प्रकर्ष
कण-कण दृष्ट करुण साकार
शाखा-शाखा कप विकार

लीलालीन ललित ललना की
पादाहति से रुष्ट
किशुक की रक्तिम कुसुमावलि
अतस्तल आक्रुष्ट
जैसे अगी क्रोधावेश
उत्तेजन का अरुणिम वेष

अनिलवेग आहत जीवन मे
उत्थित एक तरग
सक्षम वात, किन्तु जल कैसे
सह सकता है व्यग?
सब मे अपना-अपना शौर्य
अतर्लय मे मान्य अचौर्य

ऋ
भा य
ण

इतस्तत पदचाप निरतर
फिर भी अभय कुरग
मथर गति धृति उज्ज्वल आकृति
सहज प्रकृति का रग
पद-पद भूमि का सस्पर्श
गर्वोन्नत नयना मे हर्ष

लतामडपो के प्रागण म
तम का अति आतक
झुरमुट और निकुज कुज से
सूरज किरण सशक
वल्लभ हे आतप का अक
शकाकुल ईश्वर भी रक

अमरवेल ने आराहण कर
किया वृक्ष का शाप
वह केसा प्राणी जो करता
पर-शोषण निज पोष
कितना हाय जुगुप्सित कम
लज्जित हो जाती हे शम

आस्थित हे श्री ऋषभ महेश्वर
देखो अपने साथ
क्रीडा की कोमल कलियो मे
अंकित सबका
अद्‌भुत है मन
मथन से मिल

स्फुरित हुआ चितन पुद्गल-सुख
भुक्तपूर्व है सर्व
आसेवन से नीरस बनता
इक्षुदड का पर्व
तत् क्षण अवधिज्ञान प्रयोग
साक्षात् स्वग अनुत्तर भोग

अनुपमेय सुख है सुरगण का
मानव-सुख लव मात्र
सागर के सम्मुख प्रवया का
जैसे लघुतम पात्र
मानस-रजन गद-उपचार
मूर्च्छा का मजुल उपहार

इन्द्रिय-सवेदन से भावित
मानव का चैतन्य
इन्द्रिय को कर तृप्त मानता
अपना जीवन धन्य
सुख का अलग-अलग सिद्धात
(आदि का कहता कोइ प्रान्त)
लगता सत्य स्वय विभ्रात

रसमय जीवन स्फुटित रसाकुर
सिर्फ शात अव्यक्त
विना शाति के मानव होगा
वस्तु-वस्तु मे रक्त
होगा ध्रुवपद मे अपराध
कैसे पूरी होगी साध?

ऋ
आ य
ण

जव जव लोभाकुर वढता है
वढता आसुर क्रोध
अहकार माया का अचल
भय ईर्ष्या प्रतिशोध
होता आवश्यक तव धर्म
जिससे होता सस्कृत कम

ममता के कोमल धागा से
वनता मनुज समाज
ममता की अति ही करती हे
मानव मन पर राज
तोड़ू ममता का तटवध
जिससे वनता सनयन अध

सत्य स्वय द्वारा साक्षात् कृत
हो तव ही अधिकार
सत्य निरूपण का मिलता हे
वद अन्यथा द्वार
जग म पग-पग निहित निधान
ऋत के मुख पर पिहित पिधान

सक्रिय ज्ञान अतीन्द्रिय दखा
अवितथ सयम पथ
ग्रथ सभी छोटे पड जाते
जागृत जव निर्ग्रन्थ
सयम जीवन सही वसन्त
कण कण मे पुष्पित ह सत
गुंजित भू-आकाश दिगन्त

ब्रह्मलोकवासी देवो का
मिला सफल सहयोग
करें प्रवर्तन धमचक्र का
आवश्यक अब योग
सकटकारी केवल भोग
अति से बढते सारे रोग

अतस्फुरणा ओर प्रेरणा
प्रस्तुत नया प्रभात
अनजाना सयम का पथ हे
हो अब सबको ज्ञात
होगा उज्ज्वल अमल भविष्य
वेश्वानर अभिषिक्त हविष्य

चिन्तन परिवर्तित निश्चय म
प्राप्त क्रियात्मक रूप
ज्येष्ठ पुत्र आहूत भरतवर
पुत्र पिता अनुरूप
समझाया सयम का तत्त्व
अधुना युग म स्फुरित महत्त्व

लो दायित्व सभाला अपना
सिहासन आसीन
मे सयम-पथ पर चलता हू
बन आत्मा मे लीन
होगा नव युग का प्रारम्भ
मानवता का कीर्तिस्तम्भ



सुना वचन अज्ञात अकल्पित
अद्भुत पहली बार
राज्य-त्याग गृह-वास विसर्जित
होगा यह परिवार
होगा त्यक्त शरीर-ममत्व
जीवन मे सव्याप्त समत्व

सजल नेत्र कपित-सी वाणी
कठकला अवरुद्ध
स्तब्ध हुआ तनु जडित स्तम्भ-सा
पल-पल बुद्ध अबुद्ध
बोला, यह क्या आज विकल्प?
बदले प्रभुवर! यह सकल्प

चरणकमल-रजकण की सेवा
देती परम प्रमोद
सागर की तुलना कैसे कर
सकता प्रभो! पयाद
अबर मे हो भले विहार
आखिर धरती का आधार

प्रभु के सम्मुख पैदल चलना
देता परमानन्द
प्रभुविरहित करिवर आरोहण
सशय का निस्यद
तुम ही मेरे सुख के स्रोत
तुम से प्रवहमान उद्योत

पद-पकज की छाया मे है
जो शीतल अनुभाव
आतपत्र की छाया मे है
उसका सतत अभाव
तुम हो प्रभुवर सहज शरण्य
सुरतरु से ही धन्य अरण्य

पश्चिम क अचल मे रवि का
जाना तम का मूल
जर्जर तनु पर क्या शोभेगा
ओढा दिव्य दुकूल?
तुम ही सबके जीवन-प्राण
तुम ही अत्राणो के त्राण

सुन्दर है वह जहा ऋषभ है
भले नगर या वन हो
ऋषभशून्य साम्राज्य सपदा
से अभिभूत न मन हो
चातक की आशा है भोर
शशधर मे अनुरक्त चकोर

राज्य-त्याग सकल्प अटल है
सयम का स्वीकार
अचल हिमाचल-सा है सुतवर!
एकमात्र अविकार
छोडो छोडो सकल विकल्प
जल्प से वर्य मौन का तल्प

य

जनता का आदेश बनाता
राजा को अनिवार्य
क्रोध लोभ की तरतमता को
शासक है स्वीकार्य
लो सभालो शासनभार
तुम हो जनपद के आधार

शिरोधार्य वाणी प्रभुवर की
किंतु न मन को मान्य
लगता है यह राज्य तुषोपम
दूर हो रहा धान्य
बरसो-बरसो अब पर्जन्य!
हो जाए अन्तस्तल धन्य

है आदेश देश का शासन
करना मुझे प्रकाम
स्थापित हम नव राज्य करेंगे
जो है असली धाम
पहले वय में भोगा भाग
उत्तर वय में होगा याग

आज्ञा के सम्मुख मैं नत हूं
जो है प्रभु का इष्ट
वही मधुर फल होगा जो
लगता है प्रभु को मिष्ट
दृष्ट में कितना अगम अदृष्ट
फिर भी केवल दृष्ट अभीष्ट

करो राज्य-अभिषेक भरत का
पा प्रभु का सकेत
अधिकारी तैयारी मे रत
मानस प्रवण सचेत
सिहासन अधिगम्य सुरम्य
जन-जन द्वारा सहज प्रणम्य

निमल जलधारा आकर्षण
हुआ राज्य-अभिषेक
ऋषभाज्ञा का भरताज्ञा मे
परिवर्तन सविवेक
प्रस्तुत नृपति भरत अनुरोध
प्रभु दे राजनीति-सबोध

हुई प्रवाहित हिमगिरिवर स
सुरसरिता की धार
शासक लेता हे जनता से
निग्रहशक्ति उधार
यदि हो सत्ता का अभिमान
शासन हो जाता है म्लान

जटिल जटिलतम जगत मे
सत्ता का व्यवहार
न्याय मिले सबको सदा
कष्ट-साध्य उपचार

शाश्वत नियम समाज मे
भांति-भाति के लोग
कुछ दुर्बल कुछ प्रवलतम
समुदय स्वय प्रयाग

दुर्वल के प्रति प्रवल नर
कर न सके अन्याय
शासन की यह सफलता
न वने वह व्यवसाय

वह सभव वनता सहज
शासक अर्थ-अलिप्त
सिहासन की अर्चना
कर सकता जो तृप्त

अजितेन्द्रिय शासक निफल
अकहीन ज्यो शून्य
सयत शासक प्राप्त कर
होती धरा प्रपुण्य

क्रूर नृपति का शासन सूत्र
मातृस्नेह से विरहित पुत्र
शासन सहसवेदन पूत
शातिदूत वनता साकूत

निग्रह कटक अध सुवास
वह शासन होता आश्वास
श्वास वने प्रतिपल विश्वास
वहीं अमल होता आकाश

केवल निग्रह-नीति से
वढता जन आक्रोश
सिर्फ अनुग्रह-नीति स
खो देता नर होश

निग्रह आर अनुग्रह युक्त
शासन विपदा-पद मे मुक्त
दोनो का समुचित व्यवहार
मनुज प्रकृति का वर उपचार

एक चक्र-बल से नही
चल सकता है यान
होता है साचिव्य से
शासन-रथ गतिमान

सचिव सुचालित शासन-तन्त्र
जनपद का पावनतम मन्त्र
मिल जाता मगल श्रीयन्त्र
सदा सुरक्षित और स्वतन्त्र

अथलुब्ध यदि सचिव है
पद पद प्रथित अनर्थ
शासक ही शोषक तदा
जल सिचन ह व्यर्थ

जनता की दुविधा मिटे
शासन का है ध्येय
दुविधा की यदि वृद्धि हो
वह आमयकर पेय

जनता के कधे पर चढकर
चलने का अधिकार न हो
सहजीवन म अमरबेल बन
फलने का अधिकार न हो

सर्ग ५

चरण-चरण के साथ चले
मन मे प्रतिपद सवेदन हो
जनतापी पीडा से विगलित
राम-रोम मे स्पदन हो

राजनीति के प्राणतत्त्व का
मिला भरत का बोध
अपने से अपना अनुशासन
अतस का अनुरोध
प्रमुदित सबका मानस-लोक
कण-कण मे उच्छ्वसित अशोक

बाहुबली को पहली शासन
मिला सभी को तोष
जनपद-जनपद मे उत्सव का
जागा अभिनव जोश
ममता मे समता का देश
सम्मुख एक नया परिवेश

ऋषभराज्य का स्वरूप और सदेश
नही भूख से पीडित कोइ
कोइ नहीं दरिद्र
सबको ही आवास सुलभ है
नहीं कहीं भी छिद्र
मन मे व्याप्त नही सताप
सम्यक् गतियुत शोणितचाप

ऊच नीच का भेद नही है
सव नर एक समान
भेद व्यवस्थाकृत है केवल
सवका सम सम्मान
सूरज मे है जो सौन्दर्य
चन्द्रमा है उतना ही वर्य

ऋषभराज्य की महिमा गरिमा
रखनी है अक्षुण्ण
नव पथ निर्मित और समादृत
हो जो पथ है क्षुण्ण
गति का सूत्र नया निर्माण
स्थिति का सूत्र समृद्ध पुराण

अन्तर्मानस की उगली से
हृत् तन्त्री का तार
झकृत हो कर देता अभिनव
मजुलतम झकार
धरती अम्बर सहज समीप
जलता है जब चिन्मय दीप

परस्परोपग्रहनीतिरेषा
सजीवनी जीवनसाधनाय
सघर्षनीतिर्न हितावहा स्याद्
दिदेश सत्य वृषभ स वन्द्य ।

श्रीऋषभायणे भरतराज्याभिषेकनामा
पचम सर्ग

सर्ग ५



छठा सर्ग

ऋषभ-दीक्षा

निरीक्षित येन निज स्वरूप
परीक्षिता भाव-विभाव-धारा
तस्येव दीक्षा प्रवरप्रतिष्ठा
समीक्षित श्रीवृषभेण सत्यम्

उदित होगा स्वर्ण सविता
मुदित प्राची पर्व है
नव उदय की संधि-वेला
प्रकृति को भी गर्व हे

अधखिली कली, मे विकस्वर
कुसुम का आकार है
सत्य सयम की सुरभि का
वन रहा प्राकार हे

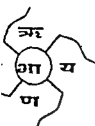
पीठ पीछे है अयोध्या
सामने हिम-अचल हे
त्याग कर प्रासाद वन के
वास का प्रण अटल है

मुनि वनेगे ऋपभ प्रभुवर
मोन मन के भाव हे
वदलनी युगधार का यह
अलख अगम्य प्रभाव हे

सुमन-परिमल को पवन गति-
प्रगति जेसे दे रहा
एक जन ने दूसरे को
प्रवण बन सब कुछ कहा

जलधि-जल मे ऊर्मिमाला
प्रसृत होती जा रही
यवनिका के पृष्ठ मे
गधर्वकन्या गा रही

स
र्ग
६



धम, सयम आर मुनि का
अर्थ-पद अज्ञान ह
शब्द का ससार सारा
अथ का अनुजात है

क्या करगे ऋपभ प्रभु अव?
मुखर वातावरण है
विश्व का कल्याण करन
ऋपभ का अवतरण है

शत-सहस्रा लोक प्रभु क
सामने आ रुक गए
वद्ध अजलि भाव प्राजल
शीश सवक झुक गए

मान वाणी आख ने ही
कथ्य अविकल कह दिया
स्नेह स अभिषिक्त वाती
जल उठा अनहद' दिया

ऋषभ

चाहते तुम राज्य की
अनुशास्ति म करता रहू
चाहते तुम जनपदो मे
प्राण मे भरता रहू

चाह का सम्मान हे
नवसृष्टि का सकल्प हे
हे विकल्पातीत मानस
चाह यह सविकल्प हे

जन-प्रतिनिधि

ऋषभ प्रभु राजा रहे
उस सृष्टि का है स्वागत
ऋषभ राजा जो न हो
वह सृष्टिपर्व अनागत

सृष्टि अभिनव या पुरातन
भेद कोई हे नहीं
है जहा प्रभु छत्रछाया
कुशल-मगल है वही

ऋषभ

भोग वढता जा रहा हे
और सुविधावाद भी
जानता कोई नही जन
त्याग का अनुवाद भी

नियति हे यह भाग की
उसका जहा उत्कर्ष ह
प्रकृति की लीला वहा पर
जनमता सघर्ष है

जन-प्रतिनिधि

भाग मानव की प्रकृति ह
फिर वहा सघष क्यो?
हे समजसता प्रकृति मे
फिर अहेतु अमप क्या?

सर्ग ६

अनय अविनय प्रभु-चरण के
प्रति नहीं सभाव्य है
फिर लिखा क्यों जा रहा यह
त्याग का नव काव्य है?

ऋषभ

प्रकृति में 'अति' विकृति लाती
यह चिरतन सत्य है
रोध 'अति' का त्याग से ही
यह सुनिश्चित तथ्य है

भोग की सीमा करे यह
धर्म है सयम-सुधा
सत्य को जाने विना ही
उलझता मानव मुधा

गिरिशिखर से निकल निझर
त्वरित गति से चल रहा
पथ रुका चट्टान से
सघर्ष चिर चलता रहा

भोग की सम्मोहिनी से
चक्षु की द्युति रुद्ध है
आवरण को दूर करने
चेतना प्रतिवुद्ध है

जन-प्रतिनिधि

सरसता है भोग में, क्यो
रोग माने आयवर!
त्याग नीरस है निपेधक
हत! कैसे हो प्रवर?

जानना हम चाहते है
आर्य की उस दृष्टि को
और जो क्रियमाण है उस
कल्पना की सृष्टि को

ऋषभ

इक्षु रसमय अनासेवित
सरसता सप्राण है
और सेवित विरस वनता
मात्र त्वक् निष्प्राण है

भोग भी आपात मे प्रिय
मधुर मनहर कात है
विरसता क्रमश वढाता
पाक उसका क्लात है

त्याग की है विरल प्रतिमा
आदि मे रसमुक्त है
दीर्घकालिक सेवना से
अतुल रस-सयुक्त है

चेतना-जागृत पुरुप वह
देखता परिणाम को
सुप्त मानव पुरुप केवल
देखता है काम को

जन-प्रतिनिधि

तम हटा आलोक-रुचि स
दीप्त अन्त करण हे
प्रभु! तुम्हारे चरण रम्य
शिव सत्य शरण हे

धूलि जो पदचिह्न-चिह्नित
पथ हम वह मान्य ह
भूमिवासी के लिए तो
अमृत केवल धान्य है

जो करेंगे प्रभु वही
करणीय हम सबके लिए
आज तक तुमने जलाए
ज्योति के अनगिन दिए

तुम विधाता और धाता
सृष्टि के ओकार हो
और सामाजिक व्यवस्था
के तुम्ही आधार हो

छोड भोगावास हम भी
त्याग के पथ पर चल
सुखद सयम कल्पतरु की
छाह मे फूल फले

प्रार्थना का स्वर अनुत्तर
प्रसृत वातावरण म
शाति रहती चेतना मे
खोज ह उपकरण म

भरत! न तुम चिन्ता करो
हम है प्रभु के साथ
कच्छ आदि के भावमय
उठे हजारों हाथ

विस्मय विस्फारित नयन
बोला भरत नरेश
क्या होगा सबके लिए
प्रभु का यह संदेश?

जीवन-शैली सर्वथा
नइ-नई है भ्रात।
बहुत दूर मध्याह्न है
चाक्षुष अभी प्रभात

मित्र ओर परिवारजन
बोले वच साक्रोश
दुष्कर गृह का त्याग है
जल ही तरु का पोष

तटबधो के मध्य ही
सरिता का सोन्दय
तटबधो को तोड वह
होती सहज कदय

कच्छ-महाकच्छ आदि का कथन

प्रभु का बहु उपकार है
हम आकठ कृतज्ञ
उपकारी का साथ दे
होता वही अभिज्ञ

प्रथम क्षण मे पीत जल-
स्मृति का प्रकट प्रभाव
देता है जल अमृतसम
नालिकेर सद्भाव



मधुकर वन लगे सदा
प्रभु चरणाब्ज पराग
श्रद्धामय अनुराग से
विकसित विशद विराग

नगर से अभिनिष्क्रमण नव
सृष्टि का अभियान ह
पथ का जेसे अपथ मे
हो रहा प्रस्थान हे

ऋपभ शिविकारूढ अनुगत
जन-जलधि का वेग है
प्रभु मनस की ऊर्मियो मे
उछलता सवेग ह

नंदिकर सिद्धार्थ नामक
स्निग्ध हिम उद्यान हे
प्रथम दीक्षा स्थल वना
जो प्रकृति का परिधान हे

'वठ जाए सब भरत का
भावमय निर्देश है
वेप अपना किन्तु सवम
एक सा परिवेश है

प्रभु विराजित सहज सुन्दर
भू-शिला के पट्ट पर
शेप सह दीक्षार्थियो की
पंक्तिया सम्मुख प्रवर

केशलुचन के लिए अगुष्ठ
अगुलि से जुड़ा
लग रहा था चेतना के
पक्ष मे तन भी मुडा

पचमुष्टिक लोच मे बस
एक मुष्टिक शेष था
लोच के आलोच मे भी
गूढतम संदेश था

इन्द्र के अनुरोध पर वह
शेष चिरजीवी बना
पूत होता भावना की
भव्य चलनी से छना

सुखद वातावरण मुद्रा
ऊर्ध्व कायोत्सर्ग की
नींव प्रभुवर रख रहे है
आज तो अपवर्ग की

बद्ध अजलि प्रणत मस्तक
सिद्ध की अभिवदना
विमलता ज्यो विमलता की
कर रही अभिनदना

परम सामायिक निरन्तर
अब मुझे स्वीकार्य है
आचरण सावद्य अविकल
सर्वथा परिहार्य है

सर्ग ६

उच्चतम यह गगनचुंबी
शिखर शीर्ष समत्व का
हो रहा है घटित सहसा
ग्रंथिभेट ममत्व का

शिष्यवर चालीस सौ प्रभु
साथ दीक्षित हो गए
सघन ऋजुता साधु जीवन
के लिए सब थे नए

प्रभु अतीन्द्रिय चेतनायुत
अवधि से सम्मान्य हैं
शिष्यगण की मनन-चिन्तन-
भूमिका सामान्य है

चेतना की विमलता ने
कमलदल को छू लिया
आत्मवर्चस्-वदिका पर
जल उठा अविचल दिया

मन पर्यवज्ञान का
उपहार पहले क्षण मिला
आवरण का पीठ दृढ़तम
एक झटके मे हिला

अवधि से प्रत्यक्ष पुद्‌गल-
जनित वस्तुव्रात ह
मन पर्यव स समन-मन
हो रहा साक्षात है

प्राण इन्द्रिय चेतना से
सुरभिकण आघ्रात है
शब्द के ससार मे प्रति-
पल सुनहला प्रात है

मुक्त सारे वधना से
मुक्ति केवल साध्य है
त्यक्त है आभोग केवल
धर्म ही आराध्य है

चिर सुचिर परिचित विनीता
अपरिचित अब हो रही
लग रहा था आज जनता
धैर्य अपना खो रही

जा रहे हो नाथ! हमको
छोड कर अज्ञात मे
भेद हम कर पा रहे थे
रात और प्रभात मे

चरण सन्निधि प्राप्त कर प्रभु!
प्रात जैसी रात भी
दूर पा प्रभु चरण-युग को
रात जैसा प्रात भी

था हमे विश्वास पल-पल
प्रभु हमारे साथ है
क्या हमे चिन्ता अभयदय
सदय सिर पर हाथ है

सर्ग ६



छत्र-छाया मे पले हम
हो रहा क्या आज है?
क्या मिलेगा विजन में अव
नाथ। यह तो प्याज है?

भावना का उत्स अक्षय
शब्द-सरिता बह चली
सजल नयनो से हुई
अभिपिक्त पूर्ण वनस्थली

चाहता है भरत कहना
किन्तु जलधि अथाह है
ओर वाहुवली न कोई
खोज पाया राह है

भरत

करुणाकर हे। करुणा कर के
इक वार निहार निहाल करो
यह बधन हे पुर-वास प्रभो।
तुम मुक्त हुए सुख से विचरो

यह भक्तिभरा नभ से उतरा
स्वर है इसमे अब अर्थ भरो
पुनरागम का कर इंगित हे
जननायक। मानस पीर हरो

भरतेश्वर के स्वर म करुणा-
रस ने वर निर्झर रूप लिया
जन मानस हर्प विभोर हुआ
सवने स्वर मे स्वर घोल दिया

वाहुवली

यह जन्मभूमि हम सवकी नाथ! विनीता
परिकर परिजन धन वैभव से सप्रीता
सव कुछ हो इसमे केवल ऋषभ नहीं हो
नवनीत कहा उपलव्ध न देव! दही हो

यह अमल कमल अव दूर-दूर जाएगा
मधुकर परिमल से दूर न हो पाएगा
प्रभु! सुनो प्रार्थना तक्षशिला भी प्यासी
विश्वास प्रवल है विनति न होगी वासी

अट्ठानवे पुत्र

है साकेत निकेत हमारा
इस पर जन्मसिद्ध अधिकार
कर अधिकार-विसर्जन प्रभु ने
त्याग दिया अपना परिवार

निर्ममत्व तुम, हम ममता के
कोमल धागो से आवद्ध
रागमुक्त तुम, रागयुक्त हम
समरागण मे है सन्नद्ध

याद करगे प्रभु को हम सव
कभी-कभी कर लेना याद
आते-जाते पल भर रुक कर
कर लेना हमसे सवाद

इन आखों मे प्यास प्रवल है
प्रतिविम्वित अन्तर्विश्वास
श्वास-श्वास मे ऋषभ-ऋषभ की
ध्वनि का होता है आभास



देव! हमारे राज्यो मे भी
करना पावन चरणस्पश
घटा जलद की देख कृपक के
मन मे होगा अतिशय हर्प

सत ओर सरिता का जीवन
गतिमय निमल एक प्रवाह
हरता है सताप जगत का
मिट जाती अनव्याही चाह

ब्राह्मी-सुन्दरी

माता भी मरुदेवा स्तभित
मान मूति-सी खडी रही
पत्नी द्वय के मानस-कपन
से आकपित हुइ मही

विदुपी ब्राह्मी आर सुन्दरी
गद्गद स्वर म बोल रही
रागसूत्र के महाग्रथ का
पहला पन्ना खाल रही

स्वामी! फिर तुम कब आओगे?
दे दो थोडा सा सकेत
इगित को आधार बना कर
हम भी प्रतिपल रहे सचेत

कान खुले है, अन्तमन के
दरवाजे ह सारे बद
स्पन्दन की इस चित्रपटी पर
विरल चित्र होता निस्पद

यढ चले वे चरण आगे
लक्ष्य के आह्वान पर
रुक गए वे चरण पीछे
मुग्ध जो सस्थान पर

काष्ठभेदी भमर होता
बद्ध पकज-कोश मे
खोजता नर सुख अनुत्तर
अतत सतोप म

हुआ सहज अज्ञात में
प्रभु का प्रथम पडाव
शिष्य सघ म उल्लसित
दीक्षा का अनुभाव

भक्ति भावना प्रचुरतम
अल्प तत्त्व-विज्ञान
दीक्षा का उद्देश्य ह
प्रभु का अव्यवधान

वचनगुप्ति से सवलित
प्रभु का मौन विहार
दृष्ट अनिर्वचनीय है
सवेदन के पार

सुख-दु ख की सवेदना
से होता है मद
वह सवेदन स पर
आत्मा का आनन्द



निर्गुण आत्मानन्द मे
हुए प्रतिक्षण लीन
जैसे सलिल-निमग्न हो
महासिन्धु का मीन

सुख सरिता के तीर पर
सकल शिष्य समुदाय
प्रभु निमज्जन कर रहे
खुला नया अध्याय

अभूतपूर्वोऽनुभवो यतोऽभूत्
अभूतपूर्वा मनस प्रवृत्ति
सा पुण्यपूता ऋषभस्य दीक्षा
प्रेक्षाप्रसिद्धयै सक ष्य भूयात्।

श्रीऋषभायणे ऋषभदीक्षानामा
षष्ठ सर्ग

स
र्ग
७

सातवा सर्ग

अक्षय तृतीया

ममत्वशून्ये मनस प्रचारे
ज्ञाता परेषा मनसो विशेषा
मनस्विनामात्मवता मनस्सु
विकासवीक्षा ऋषभो विदध्यात्।



धर्म के आकाश मे
रवि का नवोदय हो रहा
जागरण उस परम पद का
आज तक जो सो रहा

ध्यान कायोत्सग मुद्रा
मोन अन्तर्व्याप्त है
दिव्य आभा दिव्य आत्मा
लग रहा वह आप्त ह

दिवस बीते जा रहे वह
अग अचल अश्रात है
भूख की जय प्यास की जय
अन्तरात्मा शात है

मन अमन अनुभव निभय वर
मुक्त नव आयाम ह
कामना के वलय का लय
सतत आत्माराम ह

मुनिगण का कच्छ-महाकच्छ स निवेदन

हे महाकच्छ! ह कच्छ!
अमृत वरसाओ
धाराधर बनकर क्षिति का
ताप मिटाओ

क्या भूख प्यास से
आजीवन समझोता?
या कोई सीमा?
निर्णय हो इकलौता

संशय संकुल मन
समाधान का कामी
हो प्रमुख शिष्य तुम
हम सब है अनुगामी

आशा के आश्रय मे
संभाव्य प्रतीक्षा
रोटी से बढकर क्या
है जग मे शिक्षा?

कच्छ-महाकच्छ का उत्तर

पहले शिक्षा देते
पथ बतलाते
अनिमेष दृष्टि से
वत्सलता बरसाते

अब मौन, नयन है
अर्धनिमीलित भाई।
क्या पूछे? किससे पूछे?
यह कठिनाई

हम चले सभी तन-मन
की स्थिति बतलाए
संभव संवेदन की
गाठे खुल जाये

हा साधु-साधु कह
सबने चरण बढाए
प्रभु के सम्मुख आ
हार्दिक भाव सुनाए

ऋ आ य ण

प्रभु से प्रार्थना

चरण, रसना और मन
ये तीन चेतन-चिह्न हैं
लग रहे वे आज सारे
चेतना से भिन्न है

चरण चलने को चपल है
जीभ खाने के लिए
मन चपल है सोचने को
देव! अविचल किसलिए?

क्या करे आहार की
कब तक रहेगी वर्जना?
मौन खोलगे कदा? कब
मधुकणो की अर्जना?

देव! हम सब अति बुभुक्षित
कठ म अति प्यास ह
आख खोले और बोले
बोलता विश्वास है

जड चर्या से कैसे होगा
जीवन यात्रा का निर्वाह?
आत्म-साधना प्राण-धारणा
दोना की दिखलाओ राह

तुम शरण्य शरणागत हम सब
शरणदान पावन कर्त्तव्य
वर्तमान मे मधु ममतामय
वे अतीत के क्षण स्मर्तव्य

एक ओर श्रद्धा के जलधर
से मन का उडुपथ आकीर्ण
पक्ष दूसरा भूख वेदना से
आहत मन, अग विदीण

व्यथा भूख की वचन अगोचर
कर देती श्रद्धा का खड
रोटी से अभिभव आस्था का
होता तब चलता पाखण्ड

शिष्य भावना पहुच न पाई
गुरु के अन्तमानस तक
शिष्य न मज्जन कर पाए गुरु-
आशयकृत अनुभव रस तक

मन का आकर्षण सन्निधि म
तन की विवश हुई दूरी
होती ह किसकी दुनिया म
आकाक्षाए सब पूरी

कमलकोश से मधुकण मधुकर
ओर नही अब ले सकता
रवि अदृश्य उन्मेष नही वह
कमलाकर को दे सकता

आसपास मडराने वाले
भ्रमरो का गुजारव मोन
हो न पराजित भूख-प्यास से
जग म ऐसा मानव कोन?

सह-चिन्तन   सह-निर्णय

क्या पुन अयोध्या
भरत शरण में जाए?
अथवा परिजन के
परिचय मे फस जाए?

यदला चिन्तन घर छोड़ा
फिर क्यो घर म,
हो मुक्त गगन-गृह
गगा के परिसर मे

सहचिन्तन कर सुर-
सरिता-कूल निहारा
शीतल तरु छाया
निर्मल जल की धारा

ह सुलभ मूल-फल
फूल-पत्र खाने को
यह नृत्य ऊर्मि का
चल-मन वहलाने को

तप की चया ने
तापस वर्ग वनाया
धीमे-धीमे चिन्तन
दर्शन बन पाया

गगा के तट पर
एक अनूठा मेला
हे लहर-लहर मे
प्रतिविम्वित गुरु चेला

ऋषभ   आत्म-साक्षात्कार की साधना

भीतर मे एकाकी, बाहर
एक पंक्ति का गीत हुआ
समुदय का आधार शब्द है
मानस शब्दातीत हुआ

चाह नहीं है, राह वही है
सत्य कही अस्पष्ट नही
शुद्ध चेतना के अनुभव मे
प्रिय-अप्रिय का कष्ट नहीं

आत्मलीनता के मदिर मे
बाहर का विस्मरण हुआ
आत्मा मे परमात्मा का
अनजाना-सा अवतरण हुआ

भूख तृषा अनुभूति अल्पतम
योग-विभूति प्रसाद मिला
शरदचद की प्रवर चादनी
कमल सुकोमल सुमन खिला

खडे रहे छह मास श्वास की
गति लययुत अतिमद हुई
सक्रिय है चैतन्य प्राण की
बाह्य वृत्ति निस्पन्द हुई

अन्तदर्शन मे वह देखा
जो अब तक अज्ञेय अदृष्ट
समता की सीमा मे होता
नहीं कहीं भी इष्ट-अनिष्ट

चिन्तन म उच्छ्वास

यह शरीर पुद्गल से परिचित
उपचित होता पा आहार
अपचित होता अनाहार से
पुद्गल का पुद्गल से प्यार

आत्मा की उपलब्धि अनुत्तर
हो शरीर धारण का अथ
इस शरीर की सरक्षा क
हेतु अशन अतिशेप समर्थ

भोजन से तनु तनु से होगा
धर्मतीर्थ का अथ अनुवृत्त
धमतीथ स वृत्त मनुज की
सस्कृति का यह हो इतिवृत्त

केवल कृश करना वपु को ह
प्रस्फुट ही ऐकातिक वाद
पोपण ओर तपस्या म ही
अनेकात्त-सभव सवाद

दानधम विज्ञात नहीं हे
कसे होगा भोजन प्राप्त?
नहीं हुआ कोई व्याख्याता
नहीं हुआ कोइ जन आप्त

नहीं कही काइ भिक्षुक ह
अश्रुत भिक्षा जेसा शब्द
मुनि-धर्मोचित भाजन दुलभ
भरो वीत जाय सा अब्द

आहार के लिए चक्रमण

कल्पतरु जगम हुआ
हर्षित हुई है मेदिनी
चरण का पा स्पर्श कण-
कण मे प्रभव प्रस्वेदिनी

स्वर्ग की अनुभूति धरती
अमित पल पल पा रही
गाव की जनता प्रफुल्लित
भक्तिगाथा गा रही

आ गए है ऋषभ प्रभुवर
आज अपने गाव मे
कठिन भूमी, है नहीं
पदरक्ष प्रभु के पाव मे

अश्व उत्तम जाति का
मनवेग सा गतिवेग है
देव! आरोहण करो
यह भावमय सवेग है

दृष्टि विस्मयपूर्ण डाली
चरण आगे बढ गए
अनसुना श्रुत हो गया
पदचार के पद गढ गये

अश्व छोटो के लिये
प्रभु शक्तिपुञ्ज महान है
शीघ्र जाओ, द्विरद लाओ
योग्यतम सम्मान है



देव! ऐरावत सदृश
गजराज उन्नत काय हे
सुखद यात्रा जनपदो की
हो वरेण्य उपाय हे

ध्यान दो इस प्रार्थना पर
हम हृदय से भक्त हे
सकल अलि नलिनी-प्रसव
पर प्रकृति से अनुरक्त ह

ज्ञेय सव कुछ किन्तु सीमा
मतिविहित आदेय की
विविधता परिकल्पना की
चिन्तता ह ध्येय की

ऊर्ध्वदर्शी ऋषभ जनता
अध्वदर्शी भेद ह
सुखद पदयात्रा न कोई
खेदकृत प्रस्वेद हे

थाल मुक्ता से भरा
उपहार कोइ ला रहा
भक्तिभावित भाव कोई
स्तवन-मगल गा रहा

स्वर्ण नाना मणि-निचय की
भेट का प्रस्ताव है
पूज्य के सम्मुख समपण
मानवीय स्वभाव हे

समय इतना हो गया
भोजन नहीं प्रभु ने किया
शीघ्र कर तैयार लाऊ
जल उठे कोई दिया

कठ मे है प्यास अति
जलपात्र पल मे आ गया
मौन यात्रा हो रही है
लग रहा सब कुछ नया

स्निग्ध मधु भोजन नहीं
स्वीकृत हुआ कणमात्र भी
हाथ का ना स्पर्श किञ्चित्
पा सका जलपात्र भी

जल सुशीत अपक्व वर्जित
अशन जो उद्दिष्ट है
पर अहिसा साधना मे
दृष्ट पर अस्पृष्ट है

पर्यटन जनपद घरो मे
भिक्षु का चलता रहा
किन्तु भिक्षालाभ अवर-
पुष्प वन फलता रहा

समयरथ के चक्र की
गति का कहीं न विराम है
दिवस बीते जा रहे हैं
प्रकृति भी निष्काम है



वार्तालाप नमि-विनमि का

नमि विनमि घर आ रहे
सम्पन्न यात्रा-क्रम हुआ
एक अनजाना प्रकपन
'कुछ हुआ सभ्रम हुआ

क्या पिताश्री अन्य अथवा
कल्पना से मन भरा
हत! कसे सरिततट-
वासी यही क्या ऊर्वरा?

नाथ हे प्रभुवर्य केसे
यह अनाथाश्रय खुला?
इस अनाथोचित दशा का
रग यह कैसे घुला?

निलय का वह वास सुखकर
यह कुटज सायास ह
प्रतनु अशुक पहनते अव
सिर्फ वल्कल यास ह

धूलिधूसर तनु कहा
सुरभित विलेपन की छटा?
वे कहा चिकने मृदुल कच
पवन कम्पित यह जटा?

सिर झुका, कर प्रणति पूछा
तात! यह सब क्या हुआ?
गगन मे स्वेच्छाविहारी
आज पजर मे सुआ?

राज्य सवको दे ऋषभ
मुनि-साधना मे लीन है
साथ ही दीक्षित हुए हम
उस जलधि के मीन है

प्रभु वुभुक्षित आज भी
अविराम गति, न रुके, थके
हम वुभुक्षा को नहीं
अध्यात्मरत हो सह सके

अव चले घर मे पुन
वनवास का क्या अर्थ है?
त्याग घर का कर दिया
अव लोटना तो व्यर्थ है

जी नही सकता मनुज
तरु के विना जनमत सही
यह फलद है साधना मे
भूमिका इसकी रही

राज्य के लिए प्रार्थना

हम जाते है प्रभु चरण-शरण मे स्वामी।
वे है घट-घट के द्रष्टा अन्तर्यामी
विश्वास अटल वे राज्य हमे भी देगे
सत्याग्रह कर अधिकार जता ले लेगे

आश्चर्य, सभी पुत्रो को राज्य दिया है
हमने फिर ऐसा क्या अपराध किया है?
है भरत तनय तो हम भी सुत पालित है
य कलिया इन हाथों से ही लालित है

आ ा ेश, कल्पना, श्रद्धा सभी समेटे
प्रभु सम्मुख आए दोनो पालित बेटे
दो सविभाग ओ' केसे हमे विसारा?
कैसे बदला यह आकाशी ध्रुवतारा?

आ ेश मिला तब हमने की थी यात्रा
फिर क्यो न हमे दी भूमी गोष्पद मात्रा
अब मौन खोल सस्नेह महेश' निहारो
अधिकार सभी को प्रिय जननाथ' विचारो

आ ार कुसुमवत व्यर्थ अर्थना सारी
पल भर मे केसे खिलती केसर क्यारी?
प्रति दिवस प्रार्थना होगी, राज्य मिलेगा
पा बार-बार अभिषेक गुलाब खिलेगा

प्रात साय मध्याह्न प्रवर त्रय सन्ध्या
कोई भी वेला हुइ नही फिर वन्ध्या
बन गया मत्रजप राज्य हमे दो धाता
स्वामिन्' तुम ही भाग्य

पद-वन्दन करन
देखा श्रद्धामय यु
तुम कौन कहा से
अनहोनी

धरण-

तुम नृपति भरत से पा सकते हो धात्री
उसके सम्मुख ले जाओ झोली पात्री

नमि-विनमि-

है कोन भरत' जो दाता, हम आदाता
इस जीवन मे तो केवल प्रभु ही त्राता
तुम सुनो, भरत से राज्य नहीं लेना है
यह प्राज्य राज्य तो प्रभु को ही देना है

धरण-

दृढ निश्चय से अभिभूत धरण तव बोला-
मे नागराज हू यह मानव का चोला
प्रभुभक्ति-राग से रंजित तुम सोभागी
मे भी इन चरणो का अनुपल अनुरागी

विद्याधर का ऐश्वर्य लब्ध हो सारा
उद्‌भूत हुई है मन मे चिन्तनधारा
स्वामी की सेवा का यह अनुपम फल है
साधर्मिकता का छोटा सा सवल है

यह वचन युक्ति-सगत कह शीप झुकाया
नागेन्द्र धरण ने अभिनव अनुभव पाया
साधर्मिकता का मूल्य समझ मे आया
सत्ता के मद से कौन नहीं टकराया?

गोरी, प्रज्ञप्ति, प्रमुख विद्या का अर्पण
हिमगिरि के श्रेणि-द्वय पर राज्य समर्पण
वे पाठसिद्ध विद्याए सब सिद्धा
कल्याणकारिणी मगल मत्र समृद्धा



आक्रोश, कल्पना, श्रद्धा सभी समेटे
प्रभु सम्मुख आए दोनो पालित बेटे
दो संविभाग आ' कैसे हमे विसारा?
कैसे बदला यह आकाशी ध्रुवतारा?

आदेश मिला तब हमने की थी यात्रा
फिर क्यो न हमे दी भूमी गोष्पद मात्रा
अब मान खोल सस्नेह महेश' निहारो
अधिकार सभी को प्रिय जननाथ' विचारो

कान्तार-कुसुमवत व्यर्थ अर्थना सारी
पल भर मे कैसे खिलती केसर क्यारी?
प्रति दिवस प्रार्थना होगी, राज्य मिलेगा
पा बार-बार अभिषेक गुलाब खिलेगा

प्रात साय मध्याह्न प्रवर त्रय सन्ध्या
कोइ भी वेला हुइ नही फिर वन्ध्या
बन गया मत्रजप राज्य हमे दो धाता
स्वामिन्' तुम ही हो सबके भाग्य विधाता

पद-वन्दन करने धरण नागपति आया
देखा श्रद्धामय-युगल मनस अलसाया
तुम कौन कहा से बधु' यहा आए हो?
निश्चित अनहोनी माग सुधा लाए हो

धरण

अपरिग्रह निर्मम राज्य कहा से देगे?

नमि-विनमि

तुम क्यो चिन्तित हो, राज्यश्री हम लेगे

धरण-

तुम नृपति भरत से पा सकते हो धात्री
उसके सम्मुख ले जाओ झोली पात्री

नमि-विनमि-

हे कौन भरत। जो दाता, हम आदाता
इस जीवन मे तो केवल प्रभु ही त्राता
तुम सुनो, भरत से राज्य नही लेना है
यह प्राज्य राज्य तो प्रभु को ही देना हे

धरण-

दृढ निश्चय से अभिभूत धरण तव बोला-
मे नागराज हू यह मानव का चोला
प्रभुभक्ति-राग से रजित तुम सोभागी
मे भी इन चरणो का अनुपल अनुरागी

विद्याधर का ऐश्वय लब्ध हो सारा
उद्भूत हुई हे मन मे चिन्तनधारा
स्वामी की सेवा का यह अनुपम फल हे
साधर्मिकता का छोटा सा सबल हे

यह वचन युक्ति-सगत कह शीष झुकाया
नागेन्द्र धरण ने अभिनव अनुभव पाया
साधर्मिकता का मूल्य समझ मे आया
सत्ता के मद से कौन नहीं टकराया?

गोरी, प्रज्ञप्ति, प्रमुख विद्या का अर्पण
हिमगिरि के श्रेणि द्वय पर राज्य समर्पण
वे पाठसिद्ध विद्याए सब सिद्धा
कल्याणकारिणी मगल मत्र समृद्धा



पुष्पक विमान की रचना मे नव युग का
प्रतिविम्ब निहारा स्वप्न फलित सयुग का
तन रोमांचित, मन पुलकित दोनों भाई
कर वदन प्रभु को ली महनीय विदाई

यह कोन आ रहा देखो व्योमविहारी?
तापस युग न तव घटना नइ निहारी
धरती पर उतरा यान तनुज का देखा
कोधी धाराधर म विजली की रेखा

आश्चर्यपूर्ण तव वीती वात वताई
हमने यह प्रभुता प्रभु सन्निधि मे पाई
वेमानिक वन सोत्कण्ठ विनीता आए
सम्राट भरत को सारे वृत्त वताए

साफल्य-गर्व से मुक्त विरल ही होता
पा मनके धागा माला मनुज पिरोता
परिवार साथ ले शेल शिखर पर आए
हिमगिरि के दाए वाए नगर वसाए

श्रेयास द्वारा स्वप्न-दर्शन

सास सुख की वप ने ली
स्थिर हुआ विश्वास हे
वाह्य वातावरण मे
अज्ञात-सा उल्लास ह

नियम अन्तर्जगत का
अव हो रहा सुव्यक्त हे
इन्द्रधनुषी कल्पना से
आज प्राची रक्त हैं

स्वप्न की लीला ललिततम
स्वप्न-सा ससार है
रक को भी स्वप्न म
सम्प्राप्त नृप-अधिकार है

स्वप्न की व्याख्या स्वय ही
स्वप्न बनती जा रही
स्वप्न की यह नर्तकी
नित नृत्य-लय म गा रही

स्वप्न की सार्थक घटा म
अशनि का आवेश है
सघन चित्त समाधि का
उसमे निहित सदेश है

स्वर्णगिरि श्यामल, पयस
अभिषेक कर उज्ज्वल किया
स्वप्न यह श्रेयास ने
देखा अमृत जैसे पिया

हे अकेला कोन मानव
सक्रमण के राज्य मे?
सिर्फ घृत देखो न पय मे
दूध भी हे आज्य मे

दृश्य के पीछे प्रकम्पित
नियत नियम अदृश्य का
उलझता क्या मनुज छोटा-
सा जगत यह स्पृश्य का



स्वप्न देखा अति अकल्पित
श्रेष्ठिवर्य सुबुद्धि ने
एकता का मन्त्र मगल
पा लिया है शुद्धि ने

ज्योति से विच्छिन्न रवि
फिर रश्मि-भास्वर हो गया
श्रेय है श्रयास को
इतिहास का पन्ना नया

स्वप्न की इस शृखला मे
सोमयश भी जुड गया
गत अनागत की दिशा की
ओर सहसा मुड गया

घिर गया जो शत्रुओ से
आज वह विजयी हुआ
विजय की उपलब्धि मे
श्रेयास कालजयी हुआ

राज ससद म सहज ही
स्वप्न-द्रष्टा सब मिले
हर्ष से उत्फुल्ल आनन-
कमल अविकल थे खिले

कह उठा श्रेयास अपनी
स्वप्न-दर्शन की कथा
सोमयश की श्रेष्ठिवर की
एक जेसी ही प्रथा

स्वप्न तीनो के सुनाए
अर्थ अविदित ही रहा
शब्द के वक्ता बहुत जन
अर्थ विरलो ने कहा

शब्द का ससार सीमित
अर्थ पारावार है
अथ-गरिमा से असस्कृत
शब्द कोरा भार हे

ऋषभ का हस्तिनापुर मे आगमन

सतत यात्रा चल रही
प्रभु हस्तिनापुर आ गए
अलख पदयात्री दशा मे
लग रहे थे वे नए

भावना का विमल निर्झर
जन-मनस मे बह चला
कल्पतरु मनहर अकल्पित
आज प्रागण मे फला

कर कृपा करुणानिधे।
मम सदन को पावन करो
स्वर मुखर हे प्रार्थना के
प्राण मे स्पन्दन भरो

धन्य हे हम रत्न
चितामणि अहो प्रत्यक्ष हे
यह प्रतीक्षा मे खडा
जैसे सुसज्जित कक्ष हे



मौन वाणी, मौन अधर
अधर भी निस्पन्द है
सत्य की व्याख्या जटिलतम
कष्ट मे आनन्द है

चन्द्रमा आकाश मे
प्रतिबिम्ब सागर ले रहा
तुमुल कोलाहल प्रसृत
सकेत अपना दे रहा

आज कैसे नगर सारा
शब्द-सकुल हो रहा
प्रश्न था श्रेयास का
वृत्तात-सूचक ने कहा

देव आए है नगर मे
दिव्य भामण्डल प्रभा
तेज तप का दमकता है
चमकती उज्ज्वल विभा

आ ! पितामह का पदापण
दह रोमाञ्चित हुआ
सकल अन्त करण पुलकित
वचन गर्वांकित हुआ

आ गया परिवार परिवृत
ऋषभ सन्निधि म रुका
चरण सरसिज पुष्परज म
शीष श्रद्धा से झुका

नयन सुस्थिर पलक ने
अनिमेष दीक्षा व्रत लिया
मुक्तिदाता की शरण मे
क्यो निमीलन की क्रिया?

देखता अपलक रहा
पल-पल अमृत आस्वाद है
रूप ऐसा दृष्ट मुझको
आ रहा फिर याद है

तर्क और वितर्क कर
मन से परे वह हो गया
अचल निर्मल चेतना के
गहन पथ म खो गया

स्मृति उतर आई अमित
आलोकमय दिग्गज हुआ
जन्म का सज्ञान पाकर
शरद का नीरज हुआ

चक्रवर्ती प्रभु रहे
सौभाग्य मे सारथि रहा
तीर्थकर प्रभु के पिता थे
एक दिन सहसा कहा

पुत्र होगा प्रथम तीर्थकर
यशस्वी लोक मे
आत्मविद्या का प्रवक्ता
सतत लीन अशोक मे



तीर्थंकर की उपस्थिति में
साधु का जीवन जिया
आचरण मुनिवर्य चर्या का
सुनिष्ठा से किया

देह धारण के लिए थी
वृत्ति पावन मधुकरी
बंध की हो निर्जरा
यह भावधारा सहचरी

अक्षय तृतीया पर्व
जानता कोई नही
विधि एषणायुत दान की
सिफ जनता के हृदय म
ऊमि हे श्रद्धान की

ज्ञान का तटबध दृढ हो
यह अपक्षा आज की
स्वस्ति का वरदान वरसे
सृष्टि सुखद समाज की

नीड का निमाण करने
शकुनि तृण को चुन रहा
मत्रपाठी सिद्धि पाने
मत्र जेसे गुन रहा

खुल रहा हे द्वार अब तक
निविड विजडित बद था
हो रहा नव प्राण का
सचार जो निस्पद था

इक्षुरस से भृत सुघट
घट आ रहे उपहार मे
सूचना श्रेयास को
तत्क्षण मिली बाजार मे

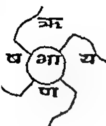
देव! यह निरवद्य है
आहार लो, करुणा करो
भावना का पात्र खाली
अमृत-विकिरण से भरो

प्रार्थना स्वीकृत हुई
श्रेयास के घट हाथ मे
ऋषभ के कर-पात्र मे
रस-दान श्रद्धा साथ मे

तरल रसहिम बन गया
दीपक शिखा आकृति बनी
गगनचुम्बी दान की
अनुकृति प्रकृति सस्कृति बनी

गगन मे रवि चन्द्र तारे
भूमि पर उद्यात है
रत्न जलनिधि अतल तल मे
सलिल पर जलपोत ह

हस्तिनापुर मे घटित
श्रेयास के अवदान की
ध्वनि प्रतिध्वनि से प्रवर्तित
हो गई श्रुति दान की



पारणा दिन पर्ववर
अक्षय तृतीया हो गया
साधना के विघ्न-मल को
जलद जैसे धो गया

ज्ञान से अज्ञान का
आवरण जैसे हट गया
आज धरती-पुत्र का
मुख दीप्त, बंधन कट गया

प्रतिक्रिया के बोल

चक्र चला वार्ता का क्या प्रभु
इतने दिन भूखे प्यासे?
किसने फेंके ये मायावी
इंद्रजाल भावित पाशे?

बतलाओ किसने की भोजन
पानी की मनुहार कभी?
धन्य-धन्य श्रेयांस इक्षुरस
पान कराया अभी-अभी

काम कठिन कितना, इतने दिन
हत! बुभुक्षित रह जीना
उससे अधिक कठिन है भाई!
इतने दिन जल ना पीना

लाख गुना है कठिन कष्ट में
भी मुख पर मुस्कान रहे
नहीं किसी मानव के सम्मुख
व्यथा कथा की बात कहे

देखो, यह आश्चर्य भरत ने
ध्यान नहीं इस ओर दिया
राज्य-भोग मे लिप्त हुआ
जो तात चरण से प्राप्त किया

बाहुबली भी दृष्ट नहीं ये
सारे ही क्यो सुप्त रहे?
अथवा प्रभु एकातवास में
हो सकता है गुप्त रहे

बहुत नागरिक मिलकर बोले
साधुवाद युवराज! तुम्हें
अभिनन्दन वर्धापन शत-शत
गौरव होगा आज तुम्हे

विस्मय है प्रस्ताव तुम्हारा
कैसे प्रभु को मान्य हुआ?
नहीं तुम्हारे जैसा कोई
चक्षुष्मान वदान्य हुआ

पिता तुल्य वात्सल्य शल्यहर
प्रभु हम सबको देते थे
स्नेहसिक्त नयनो से बरसा
सुधा, तृप्त कर देते थे

पता नहीं क्या हुआ मौन अब
नहीं पूछते सुख दु ख भी
टूट गया परिचय का धागा
नहीं देखते सम्मुख भी



पहले थे प्रभु राजा, अब मुनि
बदल गया सारा परिवेश
पहले वाले जगत् में रहते
अतर्मन में हुआ प्रवेश

पूर्ण अहिसा का अनुपालन
कैसे हय गज का स्वीकार?
त्यक्त परिग्रह कैसे रत्न
मणि मुक्ता काचन उपहार?

द्रुम-पुष्पों से जैसे मधुकर
लेता अभिलषणीय पराग
नहीं क्लांत करता पुष्पों को
छाया हीन न होता बाग

माधुकरी भोजनविधि प्रभु की
सतत प्रवाही करुणा-स्रोत
अतस्तल के गहन तिमिर में
कौन दूसरा है उद्योत?

गाय नहीं उन्मूलन करती
तृण का कर लेती आहार
अल्प ग्रहण गोचर्या, गर्दभ-
चर्या का वर्जित आचार

ले सकते खाद्यान्न यथाकृत
सहज रसवती मे निष्पन्न
अचरज प्रभु ने क्यो न बताया?
खैर हो गया सब सम्पन्न

तप से श्याम बना प्रभु का वपु
इक्षु सुधारस सिक्त किया
स्वप्न हुआ सार्थक वह मेरा
श्याम मेरु अभिषिक्त किया

क्षुधा परीषह हुआ पराजित
स्वप्न पिता का सफल हुआ
भूख नही सत्रास दे सकी
प्रभु का गौरव अटल हुआ

सपना सार्थक श्रेष्ठिवर्य का
दूर हो रहा था रुचिचक्र
पुन समायोजित पारण से
वक्र हुआ है आज अवक्र

साधु-साधु श्रेयास। तमस का
नाश किया दे नया प्रकाश
तुम से जग आलोकित होगा
जन-जन मे जागा विश्वास

पुण्य स देश प्रवर स काल
यस्मिन् तपस्या श्रित आदिनाथ
स पारणाया दिवसोऽपि धन्य
य शाश्वतीमक्षयतामवाप।

श्रीऋषभायणे अक्षयतृतीयानामा
सप्तम सर्ग

स
र्ग
७



आठवा सर्ग

केवलज्ञानोपलब्धि

आदित्यवद् य स्वपरप्रकाशी
प्रमाणभूतो विदुषा समेषाम्
साक्षात्कृतात्मा प्रतिपादितात्मा
सोऽस्तु श्रिये श्रीऋषभो जिनेन्द्र ।

प्रकृति मनोहर वहली देश
सुपमामय सुरभित परिवेश
तक्षशिला नगरी अति रम्य
वाहुवली जनमान्य प्रणम्य

हरित वाटिका वृत उद्यान
उज्ज्वल आभा तरु अम्लान
ऋषभ समवसृत प्रतिमालीन
आत्मा अर्णव आत्मा मीन

मिला नृपति को शुभ सवाद
रोम-रोम प्रस्फुट आह्लाद
उठा त्वरित-सिंहासन त्याग
जागा युगपद राग-विराग

वदन-मुद्रा नत पचाग
श्रद्धा से सिंचित सर्वांग
प्रासादस्थित मै हू देव।
तत्र स्थित देखो स्वयमेव

प्रात सबको लेकर सग
जाऊ खिल जाएगा रग
इन्द्रधनुप सकल्प-प्रसूत
कव होता स्थायित्व प्रभूत?

ज्योत्स्ना मिश्रित बीती रात
तेजस्वी बन गया प्रभात
वाहुवली गज पर आसीन
मानस प्रभु चरणो मे लीन



सत्ता का अपना आकार
अनुपद अनुगामी परिवार
मूर्त बना जैसे उत्साह
मिली चाह को समुचित राह

खुले सपदि उपवन के द्वार
ऋषभ कहा? पूछा सविचार
विस्मित स्वर मे उपवन-पाल
बोला मुकुलित अजलि भाल

देव! न देखेगे दो सूय
नहीं सुलभ अब वह वैडूर्य
एक सूर्य का नभ मे यान
अपर सूर्य का तव प्रस्थान

क्या सच प्रभु कर गए विहार?
बने नहीं क्यो तुम प्राकार?
निराधार के हे आधार!
यह कैसे अप्रिय व्यवहार?

दशन के प्यासे सब लोक
बैठे नयन-अधृति को रोक
यह क्या तुमने किया अशोक?
क्या तम उगल रहा आलोक?

कितने सपने कितने भाव!
कितने चितन के अनुभाव!
कौन सुनेगा? दीनदयालु!
मुझ पर थे तुम सदा कृपालु

क्या इतना आवश्यक काम
ले न सके दो दिन विश्राम?
यत्र-तत्र करना है ध्यान
क्या न योग्य था यह उद्यान?

वीतराग प्रभु! तुम निर्दोष
हत! तमिस्रा का यह दोष
तम ने फैलाया मृगजाल
टिक न सका चरणो मे भाल

नाथ! कहा होगा आश्वास?
धोखा देता जब विश्वास
नहीं हुआ मन मे सदेह
दृश्य न होगा देव सदेह

तक्षशिला मे हे भगवान्!
लिया नही कुछ भोजन-पान
घोर उपेक्षा का यह वृत्त
आखिर हम भी नाथ स-चित्त

बाहुबली का करुण विलाप
उबल रहा मन का अनुताप
बोला मृदु वच सचिव सुधीर
क्यो प्रभु इतने आज अधीर?

तक्षशिला मे प्रभु आवास
बुझी नही दर्शन की प्यास
यही वेदना का है मूल
चिंतन का उठता वातूल



हृदय स्थित प्रभु कैसे दूर?
सन्निकट धरती से सूर
दूर-निकट का तत्त्व अगम्य
देव! किया है तुमने गम्य

फिर क्यो आनन-कमल उदास?
क्यों मुरझाया है विश्वास?
श्वास-श्वास मे प्रभु का वास
साक्ष्य दे रहा है आकाश

तप्त दूध मे एक उफान
हुआ सचिंच वच जल-कण पान
बाहुबली अतर्-आह्लाद
पहुच गया अपने प्रासाद

यात्रा और अयोध्या मे आगमन

प्रभु का पुण्य विहार अजस्र
नाना जनपद वर्ष सहस्र
मौन साधना ध्यान प्रकृष्ट
सहज हो रहा दृष्ट

पुरिमताल
तिलक समान अ
नाम शकटमुख अनु
मे वर

तरु

मानव तरु में रहा अभेद
जुडा परस्पर अति सवेद
जीता मानव तरु के साथ
तरु ने भी फैलाया हाथ

मानव करता तरु से प्यार
तरु उसका जीवन-आधार
बोधि-उदय मे सुतरु निमित्त
निर्मल लेश्या निर्मल चित्त

नगरवास तरु का उच्छेद
मानव तरु में स्थापित भेद
सुविधा नर-कृत घर के पास
तरु से मिलता है विश्वास

वट के नीचे प्रभु का वास
ज्ञानसूर्य का अमल प्रकाश
तीन दिवस का वर उपवास
आत्मा मे चैतन्य निवास

अप्रमाद का अनुभव नव्य
अतश्चेतन कितना भव्य!
इन्द्रिय गण का प्रत्याहार
दृष्ट हुआ अभिनव ससार

जहा वस्तु ह केवल ज्ञेय
पर्दे के पीछे है हय
नही कहीं कुछ भी आदेय
आत्मा ध्याता आत्मा ध्येय



किया अह ने घोर विरोध
और किया मति से अनुरोध
क्या जागृत करती हो आज
सुप्त सिह को हे अधिराज।

जाग गया यदि परमानन्द
हो जाओगी तुम निस्पद
सार नही होगा ससार
अह बनेगा सिर का भार

सच कहते हो मानव-पुत्र।
पकडा तुमने ऋत का सूत्र
मित्र। न मेरे वश की बात
जागृत है प्रज्ञा अवदात

अतिक्रात हे मेरा क्षेत्र
उद्घाटित अभ्यतर नेत्र
प्रज्ञा का ह अपना देश
वर्जित उसमे अह-प्रवेश

जाओ खोजो आश्रय अन्य
धन्य बनोगे ओर अनन्य
बाह्य जगत् सबका आधार
सदा खुला है उसका द्वार

श्रेणी-आरोहण

क्रोध। बधुवर। सुन लो मान।
खोजो अपना-अपना स्थान
माये। देवि। सुना आह्वान
कृपया शीघ्र करो प्रस्थान

मित्र! लोभ! जो आस्पद काम्य
वही बने सहसा निश्राम्य
त्यागो तुम सब मेरा साथ
स्वीकृति मे उठ जाए हाथ

आज हुआ क्या है गणदेव!
त्याग रहे सबको स्वयमेव
हम सारे हैं सहचर मित्र
यह निर्णय तो बहुत विचित्र

पुनरपि चितन है करणीय
तर्क हमारा है मननीय
क्या अनादि का होगा अत?
कैसे पतझड बने बसत?

क्रोध-चौकडी अति आक्रुष्ट
अतस्तल भी अति-अति रुष्ट
महासिधु मे आया ज्वार
क्षीर हो गया जैसे क्षार

शात धीर तब 'करण अपूर्व'
बोला बधु! न मै था पूर्व
निर्मल श्रेणी मेरा स्थान
तर्क नही, बदलो सस्थान

क्रोध मौन हो गया अरूप
अहकार ने बदला रूप
माया का अस्तित्व विलीन
फिर भी लोभ रहा आसीन



देखा कोई मित्र न अत्र
चले गए है सभी परत्र
नहीं अकेले मे उत्साह
पकड़ी उसने उनकी राह

सेनानायक मोह कराल
सारा उसका मायाजाल
शेष हो गया अतर्द्वन्द्व
अतर्जगत् हुआ निर्द्वन्द्व

वीतराग चैतन्य विकास
दिग्-दिगत मे पूर्ण प्रकाश
निस्तरग अधुना जलराशि
कमल विकस्वर सूर्यविकासि

आवरणो का विलय अशेष
अतराय का रहा न लेश
सकल स्रोत हुआ चित् स्रोत
कण-कण से निकला प्रद्योत

रश्मिजाल की ज्योति प्रचड
खड हो गया आज अखड
ज्ञेय हुआ जो था अज्ञेय
मूर्त्त-अमूर्त्त सकल विज्ञेय

करामलकवत् सब प्रत्यक्ष
द्रव्य और पर्याय वलक्ष
शब्द-अर्थ सबध विलोप
रहा नहीं कोई आरोप

उदित हुआ वर केवलज्ञान
कलश अमृत का अमृत-पिधान
हो सकता सर्वज्ञ मनुष्य
शेष जीव है इन्द्र-धनुष्य

सकल विश्व मे सुख सचार
वचित नही नरक का द्वार
आत्मा से आत्मा का योग
आदिनाथ से जनमा योग

इन्द्रिय मन पर पूण विराम
अन्तश्चित् सक्रिय अविराम
शब्द अगोचर अनुभव-गम्य
केवल की ह कथा अगम्य

श्रीकेवलज्ञानरवे प्रकाश
दिवा निशाया प्रकटे रहस्ये
न क्वापि किंचित् तमसोऽवकाश
नात पर सत्यचिदो विलास ।

श्रीऋषभायणे केवलज्ञानोपलब्धिनामा
अष्टम सर्ग

सर्ग ८



नौवां सर्ग

आत्म-सिद्धांत प्रतिपादन

यस्य प्रकाशे जगदस्ति सत्य
प्रियाप्रियाभ्या सतत विमुक्तम्
तल्लब्धये श्रीऋषभो महात्मा
चिदात्मनो बोधविधौ प्रभूष्णु ।

स्वस्तिपाठ मगलपाठक का
जागृति का स्वर मुखर हुआ
अतरिक्ष-विमान सूर्य का
ज्योतिपीठ बन प्रखर हुआ

दसो दिशाए प्रमुदित विहसित
अनिल सुरभि-सदेश बना
लहराता-सा चचल पल्लव
गहराता-सा शात तना

प्रथम रश्मि के साथ भरत नृप
मरुदेवा-सम्मुख आया
वदन देह मे नयन निमीलित
मुद्रा का दर्शन पाया

माता! देखो पोत्र तुम्हारा
पद-वदन को आया हे
इस प्रफुल्ल पल मे क्यो चिता?
कमलकोश विकसाया हे

कोन? भरत! हा माता! मे हू
पूछ रहे तुम चिता क्यो?
पूछो इस प्रासाद कक्ष से
तुम अखड फिर खिडकी क्या?

भरत! नहीं है चिता तुमको
वेभव मद से खिडकी वद
उसको होगी चिता जिसका
घूम रहा जगल मे नद



तुम्हे पता क्या? ऋषभ कहा है?
करता है कैसा आहार?
सर्दी-गर्मी कसे सहता?
कसा है जीवन-व्यवहार?

याद आ रहे ह व वासर
भोजन स्वय कराती थी
अपने हाथो से परोसती
म दीपक, म वाती थी

भोजन का रस, मा की ममता
का रस दोनो मिल जाते
पवन प्रकृति का पवन पख का
दोनो मन को सहलाते

कितना था वह रसमय जीवन
भरत! स्वय तुम साक्षी हो
रस पल्लव इठलाते मानो
थिरक रही मीनाक्षी हो

आज अकेला, कोन दूसरा
सुख-दु ख मे उसका साक्षी?
पदचारी पहले रहता था
चढने को प्रस्तुत हाथी

पदत्राण नही चरणो मे
पथ मे होगे प्रस्तर खड
तपती धरती, तपती वालू
होगा रवि का ताप प्रचड

भूमी शय्या, वही विछौना
नींद कहा से आएगी?
रात्रि-जागरण करता होगा
स्मृति विस्मृति बन जाएगी

भरत! तुम्हारा दोप नहीं है
कहा ऋपभ ने याद किया?
एक बार भी लघु-लघुतर सा
क्या कोई सवाद दिया?

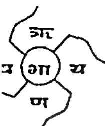
माता की आखा म आसू
पुत्र निठुर हो जाते है
विस्मृत मा का पोप हस शिशु
पख उगे उड जाते हे

मा वछडे के पीछे चलती
माता केवल माता ह
नव जीवन के आदिकाल मे
एक मात्र वह त्राता है

उचित नहीं हे मेरी चिता
भरत! तुम्हारे सिर पर हो
वत्स! तुम्हारा मन मगलमय
सुखमय घर का परिकर हो

पा आशीप महामाता से
आया नृप अपने प्रासाद
उमड रहा है चिदाकाश मे
महा मुदिर बनकर आह्लाद

सर्ग ९



स्फुरित हुआ चिंतन मन ही मन
जागृत आत्मा मे विश्वास
तन्मयता का नाम सफलता
मिटाता भावी का आभास

संवादक युग से कर्णप्रिय
मिले अनुत्तर दो संवाद
भौतिकता ने धर्मग्रंथ का
किया सफल जैसे अनुवाद

उद्यानपाल यमक

पुरिमताल के शकटानन मे
प्रभुवर ऋषभ पधारे है
एकत्रित ह अनगिन सुर-नर
नभ मे जितने तारे है

जन-जन मे चर्चा है प्रभु की
प्राप्त हुआ है केवलज्ञान
समवसरण की रचना अद्भुत
उतरा भू पर स्वर्ग विमान

आयुधशाला रक्षक शमक

जय सम्राट प्रवर की जय हो
विजयोत्सव लगता आसन्न
आयुधशाला मे आकस्मिक
चक्ररत्न अधुना उत्पन्न

दिव्य विभा आलोक रश्मि का
पुज, कुज अति वैभव का
दमक उठी है आयुधशाला
शमन हुआ है विप्लव का

भरत की मनोदशा

पुलकित तन मन के अणु-अणु म
गौरवमय उल्लास जगा
उडने को आतुर खग-शावक
नया-नया ज्यो पख उगा

दो अतिशय आनदवृत्त के
झूलो मे नृप झूल रहा
पहले किसको करू वदना
सूक्ष्म स्थूल का मूल रहा

पनिहारिन द्वारा सवाद

पनिहारी मिल अत पुर की
आई मरुदेवा के पास
माता! हमने आज निहारा
आभामय उज्ज्वल आकाश

मरुदेवा

कोन कहा क्या देखा, आकृति
पर घन विस्मय अकित है
क्या आया है ऋषभ? विनीता
का मानस आशकित है



पनिहारिन

योगी है अलवला स्वामिनि!
सिर पर आभामडल ह
ओजस्वी है, तेजस्वी है
देवाधिप आखडल है

शिलापट्ट शोभित सिहासन
महिमामडित छत्र महान
माताजी! आश्चय, हो गए
हरे भरे सारे उद्यान

कण-कण मे सौरभ फैला है
करता है सबको आह्वान
जनता कहती आज आ गया
अलख अयोध्या का भगवान

हर्षोत्फुल्ल वदन माता का
नयन-कमल मे नव उन्मेष
वदल गई चिता चिन्तन म
विदा हो गया सारा क्लेश

उत्सुकता का एक-एक क्षण
वर्ष-वर्ष से अधिक प्रलब
है अनुभव सापेक्ष सत्य यह
वही त्वरित है वही विलब

ऋषभ आ गया ऋषभ आ गया
अतर्मानस मुखर हुआ
भाव और भाषा का सगम
अनजाने ही प्रखर हुआ

दर्शन की उत्कट अभिलाषा
स्मृति का चित्र अधूरा है
भूल बदलता वर्तमान मे
तब बनता वह पूरा है

एक अकल्पित गूज उठा स्वर
सिर का भार उतर जाए
आज अयोध्या के परिसर मे
प्रभुवर सूरज बन आए

चलो चल प्रभु-दर्शन करने
मा! देखो हाथी तैयार
मदर पर्वत से भी ज्यादा
उपालम्भ का होता भार

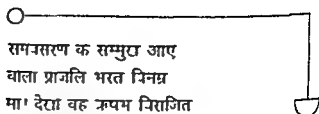
प्रमुदित मुद्रा मे माता ने
भरत शीप पर हाथ धरा
अनुभव जागा अवचेतन का
पूर्ण कलश ज्यो अमृत भरा

हर सीढी के अवरोहण के
साथ हर्ष का आरोहण
अवरोहण मे आरोहण का
होता कोइ-कोई क्षण

लगा अयोध्या बहुत बडी है
अभी न आया इसका छोर
बाहर मे है त्वरा अनर्गल
भीतर नाच रहा मन मोर

स
र्ग
९





समवसरण के सम्मुख आए
बाला प्रांजलि भरत विनम्र
मां देखा वह ऋषभ विराजित
विश्वश्री राजित कर कम

देखा मां ने विभु का वैभव
विस्मय का घन सघन हुआ
स्वय अकिचन कांचन पीछे
लगता जस मगन हुआ

टूट गई अब भित्ति भ्रांति की
जो विकल्पना निर्मित थी
कष्ट-चित्र अंकित थे जिस पर
संशय लय को अर्पित थी

उपालम्भ के तीखे स्वर से
बींधे भरतेश्वर के कान
स्मृति माला के हर मनके पर
मेरी अंगुली थी अनजान

मुझे पता क्या ऋषभ पार्श्व मे
लगा हुआ हे ऐसा ठाट
मेने सोचा वनचारी है
बन बेठा यह तो सम्राट

कैसी उज्ज्वल मुख की आभा?
केसा हे सिंदूरी वर्ण?
दमक रहा ह चमक रहा है
—हर शाखा का कोमल पर्ण

इतने दिन मैने तो ढोया
अर्थहीन चिता का भार
आकृति बोल रही है, दीक्षा
कष्ट नही, मधुमय उपहार

देख रही हू मे तो अपलक
यह अपने मे है तल्लीन
माता का मन ममता-सकुल
उदासीन सुत नहीं नवीन

हत। मोहमय चितन मेरा
यह निर्मोह विरत आत्मज्ञ
वीतरागता मे मन तन्मय
सदा सफल होता मन्त्रज्ञ

तन्मयता से मिट जाना है
ध्येय ओर ध्याता का भेद
साध लिया पल मे माता ने
चिन्मय से अनुभूति-अभेद

मरुदेवा। तू जाग जाग री।
रही सुप्त तू काल अनत
नींद गहनतम, गहरी मूर्च्छा
आओ पहली बार वसत।

सवोधन निज को उद्बोधन
अपना दपण अपना विम्व
माया का दर्शन विस्मयकर
नभ मे रवि जल मे प्रतिविम्व

स
र्ग
९







त्वरा त्वरा से चरण बढाए
क्षपक श्रेणी का वरण किया
वीतराग वन वनी केवली
आत्मा का आभरण लिया

वपु। अब तक तुम साथ रहे हो
गति वल्गन धावन सयुक्त
वाणी। मन। तुम दूर रहे हो
ध्वनि चितन से सदा विमुक्त

वाणी का पहला स्पर्शन है
पहला दर्शन ह मन का
मा बन पाई आदिनाथ की
योग मिला मानव तन का

लेती हू म आज विदाई
दाए-बाए अब न रहो
मन। बोलो बोलो तुम वाणी।
चिर-साथी तन। इसे सहो

अप्रकप अवस्था मे मा
बध-जाल से हुइ विमुक्त
अब न बुनेगी मकडी जाला
निज सत्ता मे नियत नियुक्त

कहा ऋषभ ने मा मरुदेवा
'सिद्धा सिद्धा यह सिद्धि क्षण
सप्रदाय से मुक्त धर्म की
भाषा से आभासित कण-कण

कान खुला है आख खुली है
किंतु सभी है सहसा स्तब्ध
चिंतन जेसे हुआ अचिंतन
अतर्द्वन्द्व हुआ आरब्ध

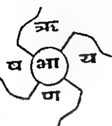
क्या अनृत? सच आखो देखा
मा हाथी पर है आसीन
नहीं ऋषभ की वाणी मिथ्या
घटना कोई घटित नवीन

आगे बढता रुकता बढता
भरत गया माता के पास
मरुदेवा मर अमर हो गई
दोहराया अपना विश्वास

देह-विसजन कर सब पहुचे
प्रभुवर के सम्मुख सानन्द
हुआ प्रवाहित प्रभु के मुख से
सुर सरिता का सलिल अमद

देह आर विदेह तत्त्व दो
नश्वर देह अनत विदेह
देह जनमता, मरता है वह
अमृत अजन्मा सदा विदेह

सुनो सुनो तुम कान! सजग हो
निर्झर का नूतन सदेश
छिपा हुआ है अपना आश्रय
आकर्पित कर रहा विदेश



आत्मा सत्य शिव सुदर
आत्मा मगलमय अभिधान
उपादान हे परमात्मा का
सयम हे उसका अवदान

सूक्ष्म तत्त्व हे इसीलिए वह
कही गम्य हे, कहीं अगम्य
किन्तु चेतना सवविदित हे
सहज रम्य प्रति व्यक्ति प्रणम्य

'मे हू' यह अनुभूति यताती
आत्मा का अस्तित्व अनत
पलभर भी जिसकी सत्ता हे
कभी न होता उसका अत

चेतन चेतन ही रहता है
नहीं अचेतन से सद्भाव
चेतन ओर अचेतन म ह
प्रकृति सिद्ध अत्यत-अभाव

पाच इन्द्रिया पाच विपय हे
मूर्तिमान यह विश्व वितान
है अमूत्त यह चेतन आत्मा
करना उसका अनुसधान

मूर्त्त वस्तु का स्थूल रूप ही
इन्द्रिय से होता है ज्ञेय
यह असीम आकाश आख के
वल पर क्या होता हे ज्ञेय?

निरावरण के बल पर होता
आत्मा का प्रत्यक्ष प्रबोध
स्वानुभूति या निज सवेदन
से भी हो सकता अवबोध

महासिधु की सलिल राशि मे
उठती-गिरती सहज तरग
पुनर्जन्म के नियति-चक्र मे
आत्मा के नानाविध रग

तेल खीचती रहती बाती
आकर्षण का सूत्र महान
हर प्रवृत्ति आकर्षित करती
पुद्‌गल बनता कर्म-विधान

कर्म, क्रिया का, पुनर्जन्म का
आत्मा से सबध विशेष
इन चारो पर आधारित हो
मानव का आचार अशेष

मानवीय आचार-सहिता
का आधार अहिसा है
शाति भग दु ख-बीज वपन कर
हसने वाली हिसा है

सजल जलद की जलधारा से
स्नात हुए सारे निष्णात
दूर अमा की सघन तमिस्रा
हुआ प्रभास्वर प्रवर प्रभात

सर्ग ९



धन्य-धन्य की अतर्वाणी
गूज उठा सारा आकाश
अगम कुतूहल नव जिज्ञासा
नया क्षितिज है नया प्रकाश

आत्मप्रसिद्धि प्रथम तत स्याद्
आचारसिद्धिश्च तत समृद्धि
येनेति सत्य परम प्रणीत
स्वात्मोपलब्ध्यै वृषभ स वन्द्य ।

श्रीऋषभायणे आत्मसिद्धातप्रतिपादननामा
नवम सर्ग

सर्ग १०

दसवां सर्ग

दिग्विजय

राज्याधिकार पितुराप्तवान् य
साम्राज्यलक्ष्मीं निजदोर्बलेन
यो भारत स्वाभिधया समृद्ध
चकार स श्रीभरत शिवाय।

अर
आ य
ण

आज हो रही दिग् दिगत मे
शक्ति। तुम्हारी अर्चा
सकल सिद्धि की मूल मत्र तुम
चारु तुम्हारी चर्चा

स्पदमान तुमसे है चितन
स्यदित अविरल वाणी
काया के प्रतिकपन मे तुम
छिपी हुई कल्याणी

ज्ञान ध्यान के पुण्य पीठ पर
आसन प्रथम तुम्हारा
अतरिक्ष के हर प्रदेश पर
अकित चित्र तुम्हारा

मनुज महत्त्वाकाक्षी पर पर
निज अधिकार जमाता
अमरबेल-सा शोषक पर की
सत्ता पर इठलाता

सवल मनुज का दुर्वल जन पर
भय घन वन छा जाता
देवि। नहीं तुम रह पाती हो
तव ममतामय माता

अस्त्र-शस्त्र मे ओर भुजा म
आसन विछा तुम्हारा
जिसे अनुग्रह लब्ध, मनुज वह
होता सवको प्यारा

नृपति भरत अर्चा करने को
पहुचा आयुधशाला
चक्ररत्न की दिव्य विभा तब
दमकी बन नव बाला

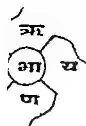
त्रि प्रदक्षिणा की, जेसे नत
शिष्य सुगुरु को करता
शक्ति परम गुरु की गुरु होती
निर्झर गिरि से झरता

आकुंचित कर वाम जानु को
दक्षिण भू विन्यासी
भरत चक्र क सम्मुख लगता
जेसे नव सन्यासी

बद्धाजलि कर प्रणति महीश्वर
सुमधुर स्वर मे बोला
चक्र! तुम्हारी अमित शक्ति को
किस मानव न तोला?

खोला तुमने द्वार विजय का
तुम अजेय अभयकर
केसे होगा कोई वैरी
तुम श्रेयस्कर शकर

अर्चा कर सपन्न नृपतिवर
निज आलय मे आया
सूरज की उज्ज्वल किरणो ने
गीत विजय का गाया



चक्रशक्ति ने राज्यशक्ति का
अभिनव रूप निखारा
वत्सलता से हुई प्रवाहित
शिशु मे जीवन धारा

भाग्योदय की शुभ वेला मे
मिलते सभी किनारे
महापुरुष की जन्म-कुडली
सगत सभी सितारे

द्विरद अश्व असि रत्न काकिणी
स्थपति प्रवर सेनानी
रत्न त्रयोदश हुए समन्वित
नियति प्रकृति-विज्ञानी

स्फुरित प्रेरणा देश विजय की
चक्रशक्ति की माया
काललब्धि की अनुपम लीला
हे निसर्ग की छाया

चक्र रत्न ने की अगवानी
हुआ सहज नभचारी
भूतल को आलोकित करता
सविता गगनविहारी

दड-रत्नधर अश्वारोही
सेनापति निर्भय है
अनुगामी होना जीवन की
एक अनोखी लय है

शातिकर्म के प्रवर पुरोधा
ने दायित्व सभाला
कर देता निर्वीर्य गरल को
एक सुधा का प्याला

प्रतिदिन भोजन-पान व्यवस्था
गृही-रत्न की रेखा
दिव्यशक्ति की अद्भुत माया
नभ में विद्युत्लेखा

प्रतिदिन की आवास-व्यवस्था
करने को उद्योगी
रत्न वर्धकी नव निर्माता
वर्तमान का योगी

चर्म-रत्न परिपूर्ण छावनी
को आश्रय दे सकता
छत्र-रत्न आच्छादन बनता
फल तरुवर पर पकता

रत्न प्रवर मणि और काकिणी
सूय सदृश तेजस्वी
रात दिवस जैसी बन जाती
ज्योतिर्मय वर्चस्वी

चला काफिला रत्नो का ले
दिग्जय की शुभ आशा
सब कुछ पाकर भी मानव मन
रहता प्रतिपल प्यासा

सिंधु नदी के आर पार तक
धर्म बना अब नौका
जल मे स्थल के अनुभव का यह
कितना दुर्लभ मोका

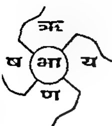
सेनानी ने सेना-बल को
सहसा पार उतारा
महाशक्ति के सम्मुख आता
अपने आप किनारा

अल्पायासी समरांगण मे
हुआ जयी सेनानी
हिमगिरि परिसरवासी जन ने
नियति-प्रकृति पहचानी

बद्धांजलि विनयानत मुद्रा
सेनापति मृदु स्वर मे
बोला स्वामिन्! सभी प्रणत है
अब आए उत्तर में

साधु-साधु सेनानी जाओ
अपना भुजबल तोलो
गुफा तमिस्रा का अतिशय दृढ
द्वार आज तुम खोलो

स्वामिन्! होगा सफल मनोरथ
दंड-रत्न की आख्या
हार्दिक इच्छा पूरी करता
शब्द-अगोचर व्याख्या



गगा मागधतीर्थ सिधु से
प्राप्त हुई जयमाला
भाग्य साथ देता पौरुप तव
वन जाता मतवाला

उद्घोषित निर्देश नृपति का
सेनापति! तुम जाओ
सिधु नदी के पार्श्व देश में
विजय-ध्वज फहराओ

चर्मरत्न जलपोत वनेगा
सरिता नहीं समस्या
देव उपस्थित वरिवस्या मे
फलदा सदा तपस्या

आकृतिवर श्रीवत्स सदृश हे
अर्धचद्र अंकित है
अचल अकप अभेद्य कवचयुत
शत्रुपक्ष शंकित है

कृपि करने वह भूमि उर्वरा
प्रातराश कर बोओ
साय काटो, खाओ जी भर
निशि सुख शय्या सोओ

शिरोधार्य कर आज्ञा नृप की
सिधु तीर पर आया
लिया हाथ मे चर्मरत्न को
सविनय शीप झुकाया

सिधु नदी के आर पार तक
चर्म बना अब नोका
जल मे स्थल के अनुभव का यह
कितना दुर्लभ मोका

सेनानी ने सेना-बल को
सहसा पार उतारा
महाशक्ति के सम्मुख आता
अपने आप किनारा

अल्पायासी समरागण मे
हुआ जयी सेनानी
हिमगिरि परिसरवासी जन ने
नियति-प्रकृति पहचानी

बद्धाजलि विनयानत मुद्रा
सेनापति मृदु स्वर में
बोला स्वामिन्! सभी प्रणत ह
अब जाए उत्तर में

साधु-साधु सेनानी जाओ
अपना भुजबल तोलो
गुफा तमिस्रा का अतिशय दृढ
द्वार आज तुम खोलो

स्वामिन्! होगा सफल मनोरथ
दड-रत्न की आख्या
हार्दिक इच्छा पूरी करता
शब्द-अगोचर व्याख्या



क्षण भर में वह विषम भूमि के
पथ को सम कर देता
दरी अनुदरा-सी बन जाती
गर्ता को भर देता

सेनापति ने दड-रत्न को
कर प्रणिपात उठाया
विनय विजय का प्रथम मन्त्र है
खोजा उसने पाया

देखा वज्रकपाट तमिस्रा
की रोरव-सी काया
पूर्ण भरोसा दड-रत्न पर
फिर भी मन कतराया

अनजाने भीतर बैठे उस
पौरुष को ललकारा
कातरता क्यो? शक्ति हाथ मे
साहस सबल सहारा

जगी वीर्य की ज्योति प्रभास्वर
उठी अनघ चिनगारी
दड-रत्न उल्लोलित नभ मे
कंपित गगन-विहारी

अथ प्रणाममय इति प्रहारमय
द्वार खुला स्थिरवासी
खोल रहा जैसे नयनो को
ध्यानलीन सन्यासी

वर्धापन कर सेनानी ने
अविकल वृत्त वताया
भरत नृपति के मानस तरु पर
वर वसत गहराया

दिव्य रत्न मणि किया प्रतिष्ठित
दमक उठा गज-माथा
विजली चमकी गरजा जलधर
गूजी गारव गाथा

जिसके मस्तक पर वह होती
आता नहीं वुढापा
रहते कच नख रोम अवस्थित
किसने नभ को नापा

अभय अनाकुल वनता मानस
आमय नहीं सताता
समरागण म शत्रुपक्ष का
शस्त्र व्यर्थ हो जाता

सुर-नर-पशुकृत विफल उपद्रव
सुप्रसन्न मन रहता
सतत प्रवाहित निर्झर का जल
प्रगति कहानी कहता

रत्न काकिणी विश्व-रश्मिधर
अमित ज्योति की धारा
अतुल शक्ति है विप हरने की
किंकर अमृत निचारा



चतुष्कोण अहरन सम आकृति
अष्ट कर्णिका पुण्या
वसुन्धरा ऐसे रत्नो से
बनी हुई है धन्या

सघन तमस सव्याप्त तमिस्रा
रवि न तिमिर को हरता
धवल चादनी से रजनीपति
भी उद्योत न करता

रत्न काकिणी उसका कण-कण
ज्योतिर्मय कर देगी
पारस का पा स्पर्श लोह की
काया ही बदलेगी

गुफा तमिस्रा मे चक्री ने
चरण बढाए आगे
रत्न काकिणी के आलेखन
बने अचिमय धागे

उनपचास मडल आलेखित
प्रतियोजन तेजस्वी
तमोविलय के लिए अनूठा
रवि-मडल वर्चस्वी

एक-एक मडल का योजन
योजन आतप फैला
बिना सूर्य के रजनी-विरहित
प्रतिपल दिन की वेला

सरिता द्वय उन्मग्न-निमग्ना
विस्मयकारी शैली
उन्मज्जन की और निमज्जन
की है कथा नवेली '

रत्न वर्धकी ने सरिता पर
पल मे सेतु बनाया
नदी पार कर सेना परिवृत
भरत तीर पर आया

गिरिजन की शर-वर्षा से हत
सेना ने मुख मोडा
प्रबल प्रेरणा है स्वतत्रता
नागपाश भी तोडा

सेनानी ने खड्ग रत्न ले
क्षण मे सबको जीता
किया पलायन जैसे मृग ने
देख लिया हो चीता

कितना अद्भुत है मन का बल
निर्मल मुक्ता पानी
हुए पराजित सेनानी से
फिर भी हार न मानी

सिधु नदी की सिकता ने रण-
श्रम के बिन्दु सुखाए
एक साथ विजयाकाक्षा के
बिन्दु सिन्धु बन आए



चतुष्कोण अहरन सम आकृति
अष्ट कर्णिका पुण्या
वसुन्धरा ऐसे रत्नो से
बनी हुई है धन्या

सघन तमस सव्याप्त तमिस्रा
रवि न तिमिर को हरता
धवल चादनी से रजनीपति
भी उद्योत न करता

रत्न काकिणी उसका कण-कण
ज्योतिर्मय कर देगी
पारस का पा स्पर्श लोह की
काया ही बदलेगी

गुफा तमिस्रा मे चक्री ने
चरण बढाए आगे
रत्न काकिणी के आलेखन
बने अचिमय धागे

उनपचास मडल आलेखित
प्रतियोजन तेजस्वी
तमोविलय के लिए अनूठा
रवि-मडल वर्चस्वी

एक-एक मडल का योजन
योजन आतप फैला
बिना सूर्य के रजनी-विरहित
प्रतिपल दिन की वेला

सरिता द्वय उन्मग्न-निमग्ना
विस्मयकारी शैली
उन्मज्जन की और निमज्जन
की है कथा नवेली

रत्न वर्धकी ने सरिता पर
पल मे सेतु बनाया
नदी पार कर सेना परिवृत
भरत तीर पर आया

गिरिजन की शर-वर्षा से हत
सेना ने मुख मोडा
प्रबल प्रेरणा है स्वतन्त्रता
नागपाश भी तोडा

सेनानी ने खड्ग रत्न ले
क्षण मे सबको जीता
किया पलायन जैसे मृग ने
देख लिया हो चीता

कितना अद्भुत है मन का बल
निर्मल मुक्ता-पानी
हुए पराजित सेनानी से
फिर भी हार न मानी

सिंधु नदी की सिकता ने रण-
श्रम के बिन्दु सुखाए
एक साथ विजयाकांक्षा के
बिन्दु सिन्धु बन आए



जन्मसिद्ध अधिकार स्ववशता
परवश नही वनेगे
अचल अटल सकल्प जयश्री
की माला पहनेंगे

हे कुलदेव! उचित अवसर यह
वनो-वनो सहयोगी
नहीं आकता मूल्य समय का
वह वन जाता रोगी

प्रार्थी वनकर नेतृवर्ग ने
त्यागा खाना-पीना
तीन दिवस तक सतत स्मृति का
दुष्कर जीवन जीना

देव-आगमन

स्मृति-कपन से कंपित आसन
देव मेघमुख आए
कहो प्रयोजन याद किया क्यो?
क्यो मुख सुम कुम्हलाए?

गिरिजन द्वारा निवेदन

कठो में है प्यास देव वर!
वह वर्षा वरसाओ
सूख रही मनहर बगिया को
फिर से तुम सरसाओ

अनाक्रात था देश हमारा
भूमी सुजला शाता
पता नहीं यह कौन कहा से
आया वन आक्राता?

इस पावन भूमी पर अरि के
पैर नहीं टिक पाए
मिट्टी का कण-कण स्वतन्त्रता
की गुंजन बन जाए

ऐसा कोई हो उपाय अब
एकमात्र अभिलाषा
आक्रामक बन जो आया वह
जाए भूखा-प्यासा

देव

स्नेहाच्छादित गगनांगण मे
गूंजी दिव्या वाणी
वही कार्य समयोचित जिसकी
परिणति हो कल्याणी

यह चक्री है षट् खंडाधिप
देवा का अधिशास्ता
शिरोधार्य निर्देश करो बस
यही सरलतम रास्ता

यह अजेय सुर-नर के द्वारा
पढो नियति की भाषा
नियम-अज्ञ नर मे ही पलती
आशा और निराशा

गिरिजन

हत! बनेगी विफल साधना
यत्न व्यर्थ जाएगा?
इष्टदेव की सन्निधि का क्या
लाभ न मिल पाएगा?



नयन अश्रु से आर्द्र गिरा मे
सरस करुण रस घोला
स्पदमान काया का अणु-अणु
स्वय मौन भी बोला

देव! मित्रता का सवेदन
गूढ अर्थयुत होता
एक सूत्र के आलबन से
माला मनुज पिरोता

दिव्यशक्ति सप्राप्त असभव
भी सभव बन जाता
कैसे मित्र बने हो तुम भी
शात्रव के व्याख्याता?

देव

इष्ट तुम्हारी है प्रसन्नता
क्यो तुम खिन्न बने हो?
हम अभेद के परिपोषक है
क्यो तुम भिन्न बने हो?

अनिल सुरभि का मूल्य जानता
मधुकर क्या जानेगा?
क्षरणशील अक्षर इच्छा को
कैसे पहचानेगा?

पारिजात यह स्वतत्रता का
पुष्पित रहे तुम्हारा
बन समीर परिमल फैलाना
पावन कृत्य हमारा

चक्री सेना पर देवकृत वर्षा

सहसा श्यामल अभोघर की
घटा गगन में छाई
चमक चमक पीतिम विजली ने
अपनी छटा दिखाई

मुसल सदृश वर्षा की धारा
काप उठा सेनानी
आदोलित सेना का मानस
किसने लिखी कहानी?

सकल धरातल जल आप्लावित
लगते है रथ नावा
हयवर गजवर जैसे जलचर
शस्त्र-शून्य यह धावा

चक्री के कर स्पर्श मात्र से
चर्म द्वीप बन पाया
छत मे बदला छत्र रत्न वर
मणि दिनमणि बन आया

गृही रत्न ने फसल उगाई
सुलझी सकल समस्या
सोचा सबने इस घटना मे
किसकी फलित तपस्या?

भरत का चिंतन

कौन अभागा भाग्यचक्र को
वक्र बनाने आया?
मायाजाल रचा है किसने
असमय घन बरसाया?

सर्ग १०



ग्यारहवां सर्ग

भरत का अयोध्या आगमन

सत्य विवक्षुर्न जगाद पूर्ण
ज्ञेय त्वनन्त वचनं ससीमम्
तथाप्युवाचात्महिताय पुंसा
वाचामगम्य ऋषभ प्रणम्य ।

हे विश्व विजय का मीठा-मीठा सपना
आकाक्षा का चीवर कव होता अपना?
आवश्यकता का जग है अतिशय छोटा
आकाक्षा का आकाश-समान मुखोटा

हिमगिरि के भाल-स्थल पर हे दो श्रेणी
वनिता के सिर पर राजमान ज्यो वेणी
उत्तर-दक्षिण में अपनी-अपनी रेखा
सूरज के सम्मुख कव घन तम ने देखा?

नमि और विनमि दोनों विद्याधर भाई
विद्या से अर्जित सागर सी गहराई
सदेश नृपति का मत्री ने पहुचाया
पदतल भू हो सिर पर चक्री की छाया

मै आदिनाथ सुत चक्री बन कर आया
सबने आज्ञा को सविनय शीश चढाया
विश्वास श्वास की हर लय मे अंकित हे
नय और विनय से वपु अणु-अणु उपचित हे

कर परामर्श दोनो ने उत्तर भेजा
करुणार्द्र ऋषभ ने हमको सदा सहेजा
हम पालित सुत हे सहज राज्य अधिकारी
केवल आदीश्वर चरणों के आभारी

कब राज्य दिया था तुमने भरत! निहारो
स्वामी बनन को व्यर्थ न पैर पसारो
तुम ज्येष्ठ बधु सम्मान तुम्हारे प्रति हे
स्वामी बनने की धुन चिन्तन की अति है

तुम रहो भूमि पर हम पर्वत अधिवासी
क्या हाथ लगेगा, हो जाओ जितकाशी?
अपनी स्वतत्रता लगती सवको प्यारी
क्या दावानल मे खिलती केशर क्यारी?

प्रभु ने स्वेच्छा से वितरित राज्य किए थे
हमने श्रद्धा के वल पर राज्य लिए थे
श्रद्धा का आग्रह कैसे खंडित होगा?
विद्या के वल से हिमगिरि मंडित होगा

होगा भद्रकर, लौट अयोध्या जाओ
मत मुद्गशैल पर पुष्करघन वरसाओ
यदि समर प्रियकर पीछे हम न रहेंगे
सव सहन करेंगे, जो गुरुदेव कहेंगे

हो सज्ज विनमि-नमि व्योम मार्ग से आए
आश्चर्य विना ऋतु वादल नभ मे छाए
अवनी अवर मे होगा क्या समझौता?
जन-जन के मुख पर प्रश्न मुखर इकलौता

यह भरत चक्र से प्रेरित विश्व विजेता
नमि-विनमि तपस्वी विद्याधर के नेता
ये अड़े हुए अपने-अपने आग्रह पर
सग्रह सत्ता का है विग्रह का आकर

दोनो पक्षो मे प्रणदित रण की भेरी
थे सज्ज, नही की एक पलक की देरी
विद्याधर विद्यावल से गर्वोन्नत है
जय की आकाक्षा पद-पद पर अनुमत है

चक्री-सेना मे चक्र अभय का दाता
अधिदिव्य शक्ति भी वनी हुई हे त्राता
जय का निश्चय है सवको सोलह आना
निश्चित होगा सार्थक केशरिया वाना

वीते दिन वीते मास वर्ष भी वीते
जय और पराजय दोनो पल्ले रीते
नवनीत मिला कव पानी के मथन से?
वारिज शतदल कव उतरा नील गगन से?

होती जन धन की हानि असीम समर मे
फिर भी विग्रह की मूल वृत्ति है नर मे
वारह वर्षों तक चक्र चला आग्रह का
अन्वेपणीय रण प्रतिफल हे किस ग्रह का

प्रस्ताव संधि का विद्याधर से आया
चक्री ने वाधव युग को त्वरित वुलाया
आनद-ऊर्मि उत्फुल्ल वदन ह सारे
कल के अरि इस क्षण मे नयनो के तारे

हे ज्येष्ठ वधु! तुम प्रतिपद ज्येष्ठ रहोगे
हे श्रेष्ठ ऋपभसुत! अनुपद श्रेष्ठ रहोगे
पर ज्येष्ठ धर्म की क्या होगी मर्यादा?
यह श्रेष्ठ पुरुप ही समझ सकेगा ज्यादा

'आदेश तुम्हारा सिर पर अटल रहेगा
पर अचल हिमालय अपनी वात कहेगा
क्यो भूतलवासी शैल शिखर पर आते?
क्या गिरिजन मन पर अपना ध्वज फहराते?



क्या अर्थ शक्ति का ओरो पर शासन है?
क्या यही सवल के मन को आश्वासन है?
निज पर शासन फिर अनुशासन की लय हो
सबकी सत्ता का आदर सही विजय हो

अब आहव-सस्कृति का जो उदय हुआ है?
परतत्र बनाने मे जो प्रणय हुआ है
इस मनोग्रंथि को क्या नर खोल सकेगा?
जो चरण बढा है क्या वह कभी रुकेगा?

हम प्रवर-पुत्र उस परम पिता के स्वामी।
मनसा वाचा प्रभु पद रज के अनुगामी
प्रभुवर ने आत्म विजय का मत्र दिया है
फिर अपर विजय का क्यो रसपान किया है?

भरत

भाई। स्वतत्र है हर कोई चितन मे
मानव का यह वैशिष्ट्य छुपा है मन मे
मस्तिष्क अनुत्तर नाडितत्र विकसित है
भावो की सरिता का प्रवाह उन्नत है

मानव प्रवृत्ति का स्रोत वृत्ति पहचानो
है प्रमुख वृत्ति अधिकार-वृत्ति तुम मानो
पा शक्ति योग अधिकार-वृत्ति इठलाती
वह सहज सचाई को झुठलाती जाती

नमि-विनमि

अक्षरश
पर देव। अभी
हम
पर स्मरण

हम वीतराग की पद रज के अनुयायी
है वीतराग की जीवन में परछाई
हो अप्रमत्त हर कृति मे मेरा भाई
अतर की इच्छा ले न कभी जभाई

भरत

सद्भावो से आपूरित तर्क तुम्हारा
सच वरसाई प्रभु ने करुणा की धारा
यह समर क्रूरता की उद्दण्ड कहानी
निर्दयता की क्रीडाभूमी मनमानी

अवर तल मे अंकित घटनावली थोथी
कोई-कोई पढता जीवन की पोथी
अव यत्न करूगा आत्मतुला की भाषा
वन जाए सचमुच जीवन की परिभाषा

तुम अपना-अपना राज्य सहर्ष सभालो
जो बीता उसको मन से त्वरित निकालो
हम ऋषभ-चरण के सव ही आज्ञाकारी
प्रभु की उपकृति के प्रति हम सव आभारी

उपहार असीमित उपहृत नमि के द्वारा
सम्मान-परिग्रह प्रतिबधन की कारा
परिणय भगिनी से, प्रणय सूत्र से बाधा
समयज्ञ विनमि ने जैसे नभ को साधा

हिमगिरि से पश्चिम गगा तट पर आया
नव निधि का वर अवदान भरत ने पाया
उपवास तीन दिन दिव्य शक्ति को साधा
तप की महिमा से दूर हुई सब वाधा



गावो की रचना विधि नैसर्प बताता
वह वास्तुकला का महाग्रथ निर्माता
सब मान और उन्मान गणित की शिक्षा
पाडुक से होती शस्यक-बीज समीक्षा

पिंगल मे आभूषण का विधि-निर्झर है
लक्षण की व्याख्या सर्वरत्न का स्वर हे
उत्पत्ति वस्त्र की महापद्म सिखलाता
रजन की नाना विधि का गुर मिल जाता

अववोध काल का काल-महानिधि देता
कृषि और शिल्प का कौशल मन हर लेता
हे महाकाल में धातुवाद अनुशासन
जिस पर आधृत है नरपति का सिंहासन

आदेय माणवक राजनीति अधिभाषी
शासन-सक्रम मे दडनीति है दासी
सामाजिक जन का आह्लादक मनरजन
है शख महानिधि नृत्य वाद्य अभिव्यजन

अब पूर्व-प्राप्त को तुच्छ तुच्छतर जाना
नव निधि को सबने लाभ अनुत्तर माना
विज्ञान प्रगति का सत्य श
अज्ञान मूल जन

आनद-ऊर्मि
किसने देखा
से

अब लक्ष्य बनी है नगरी विमल विनीता
जो बनी हुई है समरागण की गीता
अपने मन की होती है कथा निराली
मादक रस से भृत है ममता की प्याली

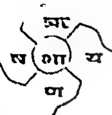
पर की रेखा मे नर उद्धत बन जाता
अपनी सीमा मे शीश स्वय झुक जाता
कोशल का परिसर, आगे पुरी अयोध्या
जो कभी नहीं है शत्रु-पक्ष से योध्या

हर तरु परिचित सा लगता है पग-पग पर
परिकर-सा लगता तरु-तरुगामी वानर
कोयल का कलरव अनजाना-सा प्रण है
केका का कोई कोमल आमत्रण है

सुरभिततर वातावरण प्रकृति का सारा
कृषको ने नृप को सोत्सव नयन निहारा
ममता धरती की अमित असीम दया है
है भरत वही पर चक्री रूप नया है

प्रभु-विरहित पथ ये लगते सूने-सूने
उत्कधर पथ की धूलि चरण को छूने
'हे महाप्राण' तव प्राणशक्ति का सबल
देता है जग को हिम ऋतु मे नव कवल

विरुदावलि के ये मूक बोल मन भावन
रिमझिम-रिमझिम बूदो से जैसे सावन
कृषिभूमी के उस पार रम्य नगरी है
अलका-सी मनहर सुरगृह से उतरी है



कर पथ पार द्रुत पुरी अयोध्या आए
थी खड़ी हुई जनता स्मित नयन बिछाए
पथराई आखों में नवजीवन लहरी
अतस् की सरिता हुई प्रवाहित गहरी

सपन्न विजय की यात्रा आज हुई है
चिर सुचिर प्रतीक्षा पल मे व्याज हुई है
प्रासाद पंक्ति ने नृपति भरत को देखा
खिंच आई अतस्तल मे स्वर्णिम रेखा

उल्लास विकस्वर आनन अत पुर मे
अंतर का चित्रण शात और आतुर म
नवनीत चेतना सब मे स्फुरित हुई है
अभिसिक्त जलद से भू अकुरित हुई है

साक्षात्कार का कैसा रूप विधायक
अलगाव पलक मे बन जाता स्मृति लायक
इस साहचर्य ने जन-जन का मन मोहा
कोई न बोलता अब अतीत का दोहा

दिन मे दिनकर ने ... विभा फैल...
रजनी म रजनी...
मन सरवर में ज...
तब सघन तमस...

हमारा
जनता

सध्या की भेरी ने सकेत जताया
वह चला गया रवि जो प्रभात में आया
दिन-रजनी का गति-आगति क्रम शाश्वत है
आलोक-तिमिर का भेदाकन सुव्रत हे

प्रद्योत बने जीवन का चिर सहचारी
प्रद्योतित मानस ही दिन का अधिकारी
तम उतर रहा पर चेता आलोकित हो
निद्रा के क्षण पर भी जागृति अंकित हो

सब मोन किंतु वाणी का स्रोत अमर है
युग-नयन निमीलित किंतु दृष्टि उर्वर हे
बाहर भीतर की घटना मे अतर हे
निशि ओर दिवस का अपना-अपना घर है

नयन विमल विदयाति वच
वचस परमस्ति मन पदवी
मनस परमेव निभाल्य निज
जिनगौरवमाप स आदिकर ।।

श्रीऋषभायणे भरतचक्रवर्तिन
अयोध्याऽऽगमननामा
एकादश सर्ग



कर पथ पार द्रुत पुरी अयाध्या आए
थी खड़ी हुई जनता स्मित नयन विछाए
पथराई आखो मे नवजीवन लहरी
अतस् की सरिता हुई प्रवाहित गहरी

सपन्न विजय की यात्रा आज हुई है
चिर-सुचिर प्रतीक्षा पल मे व्याज हुई हे
प्रासाद-पंक्ति ने नृपति भरत को देखा
खिच आई अतस्तल मे स्वर्णिम रेखा

उल्लास-विकस्वर आनन अत पुर मे
अतर का चित्रण शात ओर आतुर मे
नवनीत चेतना सव मे स्फुरित हुई है
अभिसिक्त जलद से भू अकुरित हुई है

साक्षातकार का केसा रूप विधायक
अलगाव पलक मे बन जाता स्मृति लायक
इस साहचर्य ने जन-जन का मन मोहा
कोई न बोलता अव अतीत का दोहा

दिन में दिनकर ने विशद विभा फेलाई
रजनी मे रजनीपति की ज्योत्स्ना आई
मन सरवर में जव शतदल खिल जाता है
तव सघन तमस का आसन हिल जाता है

साम्राज्य हमारा होगा अविकल जग पर
कौशल की जनता का उन्नत जीवन-स्तर
जन-जन में है उद्ग्रीव हर्ष का पारा
अधिकार-भावना का दुष्प्राप किनारा

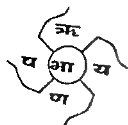
सध्या की भेरी ने सकेत जताया
वह चला गया रवि जो प्रभात में आया
दिन-रजनी का गति-आगति क्रम शाश्वत है
आलोक-तिमिर का भेदाकन सुव्रत हे

प्रद्योत बने जीवन का चिर सहचारी
प्रद्योतित मानस ही दिन का अधिकारी
तम उतर रहा पर चेता आलोकित हो
निद्रा के क्षण पर भी जागृति अंकित हो

सब मोन किंतु वाणी का स्रोत अमर है
युग-नयन निमीलित किंतु दृष्टि उर्वर है
बाहर भीतर की घटना मे अतर हे
निशि ओर दिवस का अपना-अपना घर है

नयन विमल विद्याति वच
वचस परमस्ति मन पदवी
मनस परमेव निभाल्य निज
जिनगौरवमाप स आदिकर ।।

श्रीऋषभायणे भरतचक्रवर्तिन
अयोध्याऽऽगमननामा
एकादश सर्ग



बारहवां सर्ग

अठानवे पुत्रों को संबोध

राज्य परायत्तमिद मुदे नो
स्वायत्तमानदमल ददाति
शिक्षा स्वाराज्यस्य ददौ जिनेन्द्र
शिवकरोऽसौ वृषभ शिवाय।

मोद मुदिर घन लगा बरसने
हरित हुआ जीवन-उद्यान
छलक उठे जन-मानस-सरवर
वनराजी अतिशय अम्लान

केवल मोद मनाने से क्या
बड़ा मोद से है कर्त्तव्य
मनीश्वर ने सोचा समुचित
स्मृति का सजीवन स्मर्तव्य

शेष अभी अभिषेक नृपति का
चक्री का पद अतुल विराट्
अब तक राजा, अब होगा यह
सारी जगती का सम्राट्

हुई घोषणा शुभ वेला मे
चक्रीश्वर होगा अभिषिक्त
निर्मल नयन-मुकुर मे होगी
प्रतिबिंबित सुषमा अतिरिक्त

उत्सुकता का वातावरण

अरी नींद! तुम क्यो आओगी?
नहीं मनस किंचित् भी क्लात
उत्सुकता का सूर्य उदित है
चेता प्रमुदित और प्रशात

कैसी होगी राज्यसभा की
श्री? कैसे होगा अभिषेक?
इसी लक्ष्य पर टिका हुआ मन
नहीं और कोई व्यतिरेक



अरी रात! तुम क्यों आओगी?
उदित हुआ हे भू पर सूर्य
अवर के हम क्यों आभारी
वजे गगन मे रवि का तूर्य

उत्सुकता ने जनमानस को
दिया अलोकिक दिव्य प्रकाश
नींद ओर क्षणदा की विस्मृति
जागृति का अपना इतिहास

दिनमणि की स्वर्णिम किरणों ने
किया धरा का कोमल स्पर्श
उत्तम जन आचीर्ण आचरण
वन जाता मजुल आदर्श

जनता के उत्सुक चरणो से
धरती का कण-कण आकृष्ट
पुण्य ओर पुरुपार्थ योग से
होती जीवन-गाथा सृष्ट

राज्यसभा का वैभवशाली
स्फटिकोपम आलय सुविशाल
स्वल्प समय मे हुआ सुशोभित
सिहासन आसीन नृपाल

मगलस्वर मगलपाठ्क का
वना कर्ण-कोटर का मित्र
सहसा नील गगन के पट पर
व्यक्त हुआ भावो का चित्र

श्रीसपन्न सभा की सुषमा
श्रीसपन्न समस्त समाज
नहीं एक भी मानव भूखा
रोटी पर है सबको नाज

नयन कमल उत्फुल्ल सभी के
सबके मन मे व्याप्त प्रमोद
जन्म नहीं ले पाई ईर्ष्या
वही पुरुष जिसमे आमोद

हुआ उपस्थित अधिकारीगण
जिसका जनता से सम्पर्क
परिचय का क्रम हुआ प्रचालित
नहीं कहीं भी तर्क-वितर्क

आगतुक नृप और नागरिक
सचिव-वर्ग परिचय सम्पन्न
नहीं एक भी दृष्ट सहोदर
बधुहीन सम्पन्न विपन्न

महिमामंडित आयोजन मे
क्यो न बधुगण का सहयोग?
प्रश्न और विषाद उभय का
एक साथ आकृति पर योग

सन्नाटा सा राज्यसभा मे
विस्मित लोचन मौन अखड
भापक जन भी हुए अभापक
नीरवता है दड प्रचड



क्या दुर्लभ सम्पर्क-सूत्र है?
मिला नहीं अथवा सवाद?
ध्रुव सच, इन्द्रिय-सुख की अति मे
होता हे सर्वत्र प्रमाद

कितनी शोभा होती जन में।
कितना होता मन मे हर्ष।
कितना गोरव ऋषभ वश का।
कितना परिकर का उत्कर्ष।

लगता है वाघव के मन मे
उलझ रही हे कोई ग्रंथि
जव कि नहीं कोई कर्णेजप
नहीं कही कोई परिपंथि

अनुशासित कर दूत वर्ग को
भेजा नृप ने वधु समीप
सघन तिमिर का चीरहरण तो
कर सकता हे केवल दीप

परिचयपूर्वक चक्रीश्वर का
वतलाया सविनय संदेश
चाह राज्य की यदि उसका पथ
एकमात्र सेवा वसुधेश।

सेवा मे यदि मन की कुठा
फिर
काटो
सेवा

सहचिंतन सहचित्त वधुगण
सहसम्मति से उत्तर दान
पूज्य पिताश्री की महिमा से
मिला राज्य-लक्ष्मी वरदान

नहीं भरत ने राज्य दिया है
फिर सेवा का क्या है अर्थ?
अर्थहीन यह माग न साचा
सेवा कभी न होती व्यर्थ

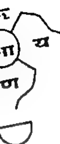
इतनी नदियो का जल लेकर
नही हुआ यह सागर तृप्त
दर्प बढा है पा पराग रस
मधुकर आज हुआ है दृप्त

प्रणत हुए है अबल नरेश्वर
बलशाली याद्धा है शेष
ऋषभ तनुज हम भरत तुल्य सब
सबको प्रिय है अपना देश

अगर बुढापा रोक सके वह
मृत्यु आर आमय का चक्र
तृष्णा को उपशात बना दे
तो होगा हम सबका शक्र

मानव मानव सभी सदृश है
मानवता सबमे सामान्य
क्या कोइ होगा फिर किंकर?
सबको जीवन देता धान्य

सर्ग १२



होगा यदि अनिवार्य युद्ध तो
हम सब राड़ने को तैयार
एक पिता के पुत्र सभी हम
नहीं भरत कोई अवतार

पूज्य पिताश्री के चरणो मे
प्रस्तुत हो लेगे निर्देश
रीति यही इक्ष्वाकुवश की
प्रवर मुकुट प्रभु का आदेश

राजदूत गण को प्रेषित कर
प्रस्थित सब हिमगिरि की ओर
चाद चादनी के आशय से
लेता जीवन तत्त्व चकोर

नाना रूप विकल्प जाल से
छोटा-सा पथ हुआ प्रलब
आकुलता का क्षण सवत्सर
अनुभव गत हे त्वरित विलम्ब

अमिट प्यास से अपलक चक्षुस्
उत्कठित मानस का तत्र
आशु आशु दर्शन-अभिलाषा
मानव हे इच्छा का यत्र

जेसे-जेसे निकट निकट प्रभु
वैसे-वैसे लगते दूर
दूर निकट सापेक्ष सत्य हे
निकट दूर अविदूर अदूर

दृश्य हुआ है सहसा दिनकर
तीव्र रश्मि से बना अदृश्य
अपलक पलको से अष्टापद
गिरिवर आज हुआ ह स्पृश्य

प्रणत हुए सब चरण कमल म
कोमल कलिका अति कमनीय
पर कठोरता दुर्बल जन को
कर देती पल मे दयनीय

बद्धाजलि बोले सम स्वर म
जान रहे हो तुम सर्वज्ञ
मुक्त ग्रथि मन की करने को
मनुज मुखर बनता अल्पज्ञ

समदर्शी तुम प्रभुवर! तुमने
दिए यथोचित सबको राज्य
हम प्रसन्न सब, एक रुग्ण हैं
कब होता नीरुज साम्राज्य?

क्या बतलाए ज्येष्ठ बधु की
मनोदशा अद्भुत अज्ञेय?
पता नही क्यो राज्य हडपना
सकल्पित जीवन का ध्येय?

सेवा अथवा समरागण य
प्रस्तावित है उभय विकल्प
सेवा केवल निर्विकल्प की
हम सबका पावन सकल्प

होगा यदि अनिवार्य युद्ध तो
हम सब लडने को तेयार
एक पिता के पुत्र सभी हम
नहीं भरत कोइ अवतार

पूज्य पिताश्री के चरणो मे
प्रस्तुत हो लेगे निर्देश
रीति यही इक्ष्वाकुवश की
प्रवर मुकुट प्रभु का आदेश

राजदूत गण को प्रेपित कर
प्रस्थित सब हिमगिरि की ओर
चाद-चादनी के आशय से
लेता जीवन तत्त्व चकोर

नाना रूप विकल्प जाल से
छोटा-सा पथ हुआ प्रलव
आकुलता का क्षण सवत्सर
अनुभव गत हे त्वरित विलम्व

अमिट प्यास से अपलक चक्षुस्
उत्कठित मानस का तत्र
आशु आशु दशन-अभिलापा
मानव हे इच्छा का यत्र

जेसे-जेसे निकट निकट प्रभु
वेसे-वैसे लगते दूर
दूर निकट सापेक्ष सत्य हे
निकट दूर अविदूर अदूर

दृश्य हुआ है सहसा दिनकर
तीव्र रश्मि से बना अदृश्य
अपलक पलको से अष्टापद
गिरिवर आज हुआ ह स्पृश्य

प्रणत हुए सब चरण कमल मे
कोमल कलिका अति कमनीय
पर कठोरता दुर्वल जन को
कर देती पल मे दयनीय

वद्धाजलि वोले सम स्वर म
जान रहे हो तुम सर्वज्ञ
मुक्त ग्रथि मन की करने को
मनुज मुखर वनता अल्पज्ञ

समदर्शी तुम प्रभुवर' तुमने
दिए यथोचित सबको राज्य
हम प्रसन्न सब, एक रुग्ण है
कब होता नीरुज साम्राज्य?

क्या वतलाए ज्येष्ठ वधु की
मनोदशा अद्भुत अज्ञेय?
पता नहीं क्यो राज्य हडपना
सकल्पित जीवन का ध्येय?

सेवा अथवा समरागण य
प्रस्तावित हे उभय विकल्प
सेवा केवल निर्विकल्प की
हम सवका पावन सकल्प



विस्तृत कर साम्राज्य शक्ति की
सज्जित सेना का विस्तार
मान रहा हे शीर्ष स्वय को
चरण शून्य कैसा ससार?

प्रभुवर! तुम से त्याग धर्म का
प्राप्त हुआ सबको संदेश
कैसे उससे वंचित भाई
उसके सम्मुख केवल देश

पथदर्शन दो करुणासिंधो!
इस क्षण का हे क्या कर्तव्य?
प्रभो! अपेक्षित पथ अपथ का
श्रव्य अगोचर शाश्वत नव्य

राज्य नहीं नभ से उतरा है
नहीं मिला अनुकपा दान
प्राप्त हुआ है पूज्य पिता से
केसे छोडें हे भगवान्!

पूर नीर का आया प्रभुवर!
उसको दो नूतन तट-बंध
कोन जानता इस दुनिया में
कितने पथ्यक कितने अंध?

प्रस्तुत की है मन की पीडा
आवश्यक पंछी को नीड
उत्तर के अर्थी हम प्रभु से
समाधान क्या देगी भीड?

द्वद्व उपस्थित चाद-सूर्य मे
यह दोनो हाथो का द्वद्व
दोनो ही पद वने विरोधी
कौन रहेगा अब निर्द्वद्व?

दोनो ओर प्रवलतम आग्रह
इसका प्रतिफल होगा युद्ध
उलझन सुलझ सकेगी तव ही
जव ये हो सारे सवुद्ध

सवुज्झह कि नो नो वुज्झह।
आको तुम इस क्षण का मूल्य
नृप पद दुर्लभ वोधि सुदुर्लभ
क्या मणि मणि सव होते तुल्य?

एक वडा आधार वोधि का
भाई-भाई मे सघर्ष
समाधान केवल उदारता
वन सकता है यह आदर्श

वाए दाए मे क्या अतर
दोनो अवयव एक शरीर
एक धार है अमल सलिल की
केवल अलग-अलग है तीर

समाधान क्या तुमको देगा
यह चचल क्षणभगुर राज्य?
चित्र। अल्प के आकर्षण म
विस्मृत हो जाता है प्राज्य



क्या लोगे तुम राज्य अनश्वर
अक्षय अव्यय अव्याबाध?
नहीं छीन सकता है कोइ
नामशेष ह सब अपराध

बोल उठे सब एक स्वर म
ऐसा राज्य हमे दो नाथ।
ऋषभपुत्र की शाश्वत गरिमा
बने रहगे सदा सनाथ

शाश्वत पद की नइ कल्पना
नइ भावना नई उमग
स्वाभाविक अज्ञात वस्तु का
होता एक अलौकिक रंग

स्निग्ध मधुर मृदु प्रभु की वाणी
शीतल जलद अमृत उपमान
नव जीवन के नव अकुर को
प्राण पवन बनता उदपान

जेठ मास की तपी दुपहरी
तप्त धूलि धरती भी तप्त
तप्त पवन का तपा हुआ तन
मन कैसे हो तदा अतप्त?

बचा आतप से नभ को क्या
तर्कशास्त्र का यह सिद्धात
भ्रात हो रहा था पग-पग पर
तपा हुआ नभ यह अभ्रात

घर से बाहर जाने की मति
कौन करेगा नर मतिमान्?
किंतु भूख से पीडित जन को
दिखता रोटी मे भगवान

बना रहा अगारकार था
निर्जन जगल मे अगार
उगल रहा था घर्म-दिवाकर
और वह्नि का ताप अपार

लेट गया तरुवर के नीचे
करने को कुछ क्षण विश्राम
श्रम निद्रा को सहज निमत्रण
निद्रा से श्रम भी उद्दाम

देखा सपना अर्ध नींद मे
लगी हुई है गहरी प्यास
सकल कूप का सलिल पी गया
फिर भी प्रबल तृषा-आभास

तालावो का, सरिताओ का
आखिर अभोनिधि का नीर
पिया चित्र। फिर भी है प्यासा
तृष्णा का लवा है चीर

पहुचा मरुभूमी-परिसर मे
देखा अल्प सलिल उदपान
पूला भीतर डाल निकाला
और निचोड किया जलपान

जो न बुझी थी प्यास जलधि से
केसे इससे बुझ पाए?
आश्चर्य सतत इच्छा की
महाग्रंथि यदि खुल जाए

मेरा राज्य विराट् अलोकिक
जहा न इच्छा का लवलेश
युद्ध ओर संघर्ष विवर्जित
नहीं क्लेश का कहीं प्रवेश

ममता समता से परिवृत हे
नहीं दृष्ट सुख-दु ख का द्वद्व
रात दिवस का चक्र नहीं हे
सारी घटनाए निर्द्वन्द्व

सब ज्ञाता सब द्रष्टा कोई
नहीं हीन ना कोई दीन
सलिल सुलभ सबको ना कोई
प्यासी है पानी मे मीन

सर्दी-गर्मी भूख-प्यास सब
कभी नही दे पाते कष्ट
दृढतम कवच सुरक्षा का हे
मन का दर्पण अतिशय स्पष्ट

इस सुराज्य मे बन जाता हे
जो अबधु वह सहसा बधु
लोकराज्य की महिमा देखो
केसे बनता बधु अबधु?

दुर्वल पर वलवान शक्ति से
कर लेता अपना अधिकार
वड़ा मत्स्य छोटी मछली से
कव करता है मन से प्यार?

वल शरीर का ओर चक्र का
भरत शक्ति से वना समृद्ध
इठलाता है व्यक्ति शक्ति पा
चाह छोटा चाहे वृद्ध

ललचाता है पुष्प किंतु वह
पल में ही मुरझा जाता
चिरजीवी है चुभन जगत मे
काटा जागृति वन जाता

भाई-भाई मे सगर की
गाएगा हर युग गाथा
सोचो कैसे भावी पीढी
का होगा ऊचा माथा?

अंतिम परिणति महासमर की
होती समझोता या संधि
नहीं वर से आग वुझेगी
जल कृशानु का ह प्रतिवंधि

निजी कलह मे काम न देता
पुन' कहीं भी आयस अस्त्र
मधुर मृदुल व्यवहार परस्पर
सवेदन का सक्षम शस्त्र



परम अरा है त्याग अनुत्तर
प्रश्न न कोई रहता शेष
भोग शेष की गगोत्री है
जग मे केवल त्याग अशेष

सोच लिया हम नहीं लड़ेगे
नहीं झुकेगा पावन शीश
पथ आलोकित हो सन्मति से
ईश। मिले वैसा आशीस

ऋषभ वश का अंकित होगा
स्वर्णिम स्याही से इतिहास
सपने मे भी कर पाएगा
नहीं कहीं कोई उपहास

निर्विकल्प हम भगवन्। केवल
आत्म-साधना एक विकल्प
आत्मा की गरिमा के सम्मुख
राज्य हमे लगता है अल्प

आत्मा का साक्षात् करेंगे
दृढ-निश्चय है, दृढ सकल्प
पूर्ण समर्पण ही होता है
कल्पवृक्ष चितामणि कल्प

प्रभुवर। सिहासन नरपति का
कैसे रह पाएगा रिक्त?
आएगे हम चरण शरण मे
पुत्रो को कर पद-अभिषिक्त

भूमी ने देखा, अवर ने
देखा जड़-चेतन सघर्ष
आखिर जय की वरमाला ने
देखा चेतन का उत्कर्ष

आत्मानुराग विषयाद् विराग
रागात्मक जीवनमस्ति पुसाम्
रागो विरागो द्वयमत्र तत्त्व
प्रदर्शित श्रीऋषभेश्वरेण।

श्रीऋषभायणे अष्टानवतिपुत्रसबोधनामा
द्वादश सर्ग

स
र्ग
१२

तेरहवा सर्ग

सुन्दरी दीक्षा-ग्रहण

आत्मानुसधानपरा प्रवत्ति
दीक्षा समीक्षा-वचन वरेण्यम्
यस्याप्तवाण्या स्फुरित पवित्राऽऽ-
चारो विचार ऋषभस्तनोतु।।

वादल कितना ही श्यामल हो
कजरारा साक्षात तमाल
सदा-सदा के लिए न रवि पर
विछता उसका मायाजाल

वस्तु-भोग-धन-प्रतिक्रिया यह
चतुष्कोण सुख का पथ है
भ्रान्ति शांति को निगल रही है
ज्ञात नहीं जो इति-अथ है

क्रीड़ा की कोमल कलियो मे
अद्भुत है मन का साम्राज्य
रत्न जलधि-मथन से नि सृत
मथन से मिलता है आज्य

है पय मे नवनीत तपाओ
ओर जमाओ मथो मिले
तप-जप-ध्यान मनन चिंतन से
आत्मा का अस्तित्व खिले

देखा नगर सुरम्य निहारे
सुन्दर सुन्दरतम प्रासाद
पा नृप का आतिथ्य अनुग्रह
लिया सरस भोजन का स्वाद

आया अपने वन कुटीर मे
वेठा फिर परिजन के साथ
कह न सका ना समझ सके वे
अनुभव एक विचित्र किरात



है स्वभाव से चेतन चिन्मय
सहज रूप मे वह अव्यक्त
इस पुद्‌गलमय तन से, मन से
वाणी से होता हे व्यक्त

इस सदेह अवस्था मे हे
अर्थ आर व्यजन पर्याय
इसीलिए नाना रूपो मे
परिवर्तित होता हे काय

प्राणापान पोद्‌गलिक दोनो
पुद्‌गल जीवन का आधार
उसमे आत्मा का अन्वेपण
करना यह दीक्षा सस्कार

पुत्र

भते' तरु के हर पत्ते से
उतर रही हे नीद निकाम
जागृति के क्षण की उत्सुकता
जागृति को सौ बार प्रणाम

जिस पथ पर पदचिह्न तुम्हारे
वही हमारा हो गतव्य
जिस पर तुमने मनन किया हे
वही हमारा हो मतव्य

ज्ञेय वही हो ध्येय वही हा
वही आदि-गुरुवर आदेय
परम तत्व तुमने खोजा हे
वही परम आत्मा का श्रेय

चिदाकाश मे चिन्मय रवि का
व्याप्त हुआ अविराम प्रकाश
समता मे दीक्षित सुत गण की
शात हो गई पल में प्यास

घटनावलि के पटाक्षेप पर
लिया सभी ने सुख का श्वास
वही श्वास बनता आश्वासन
प्रतिध्वनित जिसमे विश्वास

एक रश्मि रवि की कर देती
सघन निचिततम तम का नाश
प्रभु का एक वचन जीवन मे
भर देगा अविकल्प प्रकाश

केसे गति हो? केसे स्थिति हो?
केसे आसन? केसे सुप्ति?
केसे खाए? केसे बोले?
केसे चचल मन की गुप्ति?

मन का बल केसे बढ पाए?
बढे सहन की केसे शक्ति?
केसे कम हो पाए वपु के
ओर वस्तु के प्रति आसक्ति?

जिज्ञासायुत सुश्रूषा से
प्राप्त हुई जलधर की धार
स्वाति बूद मुक्ता बन जाती
जीवन जीवन का आधार



सयमयुत गति सयमयुत स्थिति
सयम पूर्वक आसन-सुप्ति
सयम पूर्वक अशन पान हो
श्रुत सयम से मन की गुप्ति

निस्पृहता की भाव शुद्धि की
और त्याग की शक्ति अमाप्य
कल्पवृक्ष सकल्प चेतना
इनसे मन का वल सप्राप्य

हर घटना की सघटना मे
मन के स्तर पर हो आनन्द
सुखानुभूति सह सकती दु ख को
दु ख असुख का ही निस्यद

प्रकृति गोद मे जो जीता वह
सह लेता सुख-दु ख का द्वन्द्व
विशद विधायक भाव चेतना
कर देती मन को निर्द्वन्द्व

वस्तु जगत् की परिक्रमा मे
आकर्षण का केन्द्र शरीर
नीर दृश्य ह किन्तु दूरतम
वह अदृश्य सागर का तीर

आत्मा का दशन सस्पशन
अनासक्ति का मोलिक मन्त्र
अनववोध आत्मा का लिखता
वशीकरण का माहन-यत्र

सूर्यविकासी कमल अमलतम
सूर्योदय के सह उन्मेष
हुए विकस्वर मानस सबके
पाकर प्रभुवर का उपदेश

भरत और सुन्दरी

यह अलसाई मुरझाई सी
कलिका अत पुर आसीन
इसे देखकर जाग उठे है
करुणा के स्पदन अति दीन

नियोगी

तपामूर्त्ति यह देव' सुन्दरी
तप-जप ही इसका सौन्दर्य
ऋद्धि-सिद्धि का प्रवर निदर्शन
जड वपु मे चिन्मय आश्चर्य

भरत

अचरज' कुछ वर्षों के पहले
पुद्गल ने जो दी पहचान
सरिता ने पथ बदल लिया है
सरल नहीं करना अनुमान

अशन मनुज की सहज प्रकृति है
फिर अनशन का क्या है अर्थ?
अथ और परमार्थ खोजना
नही कभी भी होता व्यर्थ



नियोगी

प्रश्न बड़ा है रोटी का पर
रोटी से भी गुरु सकल्प
दीक्षा के दृढ़ निश्चय मे हे
भते! रोटी स्थूल विकल्प

साध अधूरी दीक्षा की जो
उससे घटित हुआ यह सर्व
दैहिक दुर्बलता का स्वामिन्!
समाधान सयम का पर्व

चिता बदल गई चिन्तन मे
यह तो सारा मेरा कृत्य
दोप नहीं है किसी अपर का
आज्ञा का अनुगामी भृत्य

सयम मे जो बाधा डाली
उसका क्या हो प्रायश्चित्त
नही वित्त से सब कुछ मिलता
चित्तशुद्धि ही निर्मल वृत्त

दीक्षा लेना शक्य नही है
क्षमा मागना परम पवित्र
क्षमा करो हे भगिनि देवते!
कमलोपम तव अमल चरित्र

यात्रा हो प्रभुवर दर्शन के
हेतु हुआ भरतेश निदेश
हुई क्रियान्वित पल मे आज्ञा
समवसरण मे हुआ प्रवेश

ली अगड़ाई वसुन्धरा ने
किया गगन ने हर्ष निनाद
स्वर्णिम आभा से अभिमंडित
रवि ने बाटा पुण्य प्रसाद

हुई सुदरी प्रभु चरणो मे
दीक्षित स्वप्न हुआ साकार
वर्तमान क्षण मे जीने का
दीक्षा सर्वोत्तम उपहार

भरत द्वारा आत्मालोचन

भरत! तुम्हारा कैसा जीवन
तरुवर जेसे शाखा हीन
वन्धुजनो से विरहित कोई
कैसे हो सकता है पीन

प्रभुवर! केसे होगा मेरा
वधुजनो से साक्षात्कार?
सत्ता का अधिकार प्राप्त कर
कौन रहा जग मे अविकार

मन मे है सकोच राज्य का
हत! किया मेने अपहार
खुला मिलेगा कैसे स्वामिन्
वद किया जो मैने द्वार? -

प्रणतशिरा वोला भरतेश्वर
वधो! यह अविकल साम्राज्य
सादर सबको आज निमत्रण
देता है यह वेभव प्राज्य



अभी भोग का उचित समय है
फिर हम सब लेगे सन्यास
समयोचित का मूल्याकन हो
नश्वर म क्या हे विश्वास

ऋषभ

नश्वर मे अनुराग तुम्हारा
वधु अनश्वर मे अनुरक्त
आकर्षण साम्राज्य तुम्हारा
उससे ये सब सहज विरक्त

साक्षात्कार करो चाहे, पर
मत दो भरत। अयाचित सीख
विषयासक्त मनुज को ही तुम
तनुज। मागने दो यह भीख

भरत

साधु-साधु भगवान। दिया है
तुमने जग को चक्षुर्दान
देख सकू मै सत्य सनातन
यही प्रवर होगा वरदान

प्रभुवर। तुमने नव समाज मे
किया प्राण का प्रतिसचार
दिव्य अलाकिक आभामण्डल
बना हुआ हे जन-आधार

पारस्परिक उपग्रह सग्रह
सवेदन करुणा समभाव
वर समाज की सरचना के
हेतु नियोजित ये प्रस्ताव

जिज्ञासा है समवसरण मे
है कोई ऐसा चैतन्य
ऋषभ-तुला से तोल सकू मे
जिसकी जीवन-गाथा धन्य

वर्तमान को सभी जानते
और जानते जो है व्यक्त
भावी का सज्ञान कठिनतम
अलख अगोचर है अव्यक्त

छोटा सा वट बीज तिरोहित
उसम भावी का ससार
शाखा और प्रशाखा पल्लव
स्कन्ध सकल उसका विस्तार

तनय तुम्हारा नाम मरीची
भावी का अनुपम आलेख
कोन जानता किस आकृति मे
अकित है उत्तम की रेख

चक्री होगा षट्खडाधिप
वासुदेव आदिम आदेय
चरम तीर्थंकर परम धर्म का
उद्गाता अतिशय श्रद्धेय



भाव वीचिमाली मे सहसा
एक वीचि का नभ में स्पर्श
हर्षोत्फुल्ल मनुज बन जाता
सन्मुख होता जब उत्कर्ष

अद्भुत लीला सूक्ष्म जगत् की
अद्भुत-अद्भुत सूक्ष्म तरग
पहुच गया संदेश स्थूल तक
सूक्ष्म ऊर्मि का तीखा व्यग

अतरिक्ष से उतर रहा है
आज अहेतुक-सा आनद
अननुभूत के अनुभव मे तो
अपनी लय है अपना छद

पत्र-पुष्प दृग्गोचर होता
दृष्टि-अगोचर रहता मूल
ध्वजदर्शी नयनो मे प्रतिपल
प्रतिबिंबित होता है फूल

आत्मा के चिन्मय स्पदन मे
स्फुरित हुआ सहसा उल्लास
देखा सम्मुख भरतेश्वर को
मूर्त हुआ मानो आभास

वासुदेव चक्री तीर्थंकर
दुर्लभ त्रिक यह सुत! तव भाग्य
कहीं राग का वीणा वादन
और कही प्रस्फुट वैराग्य

'अहो कुल मे' 'अहो कुल मे'
तुलना मे आएगा कोन?
अवर मे धरती, धरती मे
अवर, सकल दिशाए मोन

वासुदेव मै प्रथम बनूगा
प्रथम चक्रवर्ती मम तात
प्रथम तीर्थकर पूज्य पितामह
नाभिवश मे सदा प्रभात

'अहो कुल मे' 'अहो कुल मे'
नहीं समाया मन मे मोद
मद की मादकता को किसने
नापा लघु वसुधा की गोद

जाति और कुल, वल के मद से
व्यथित निरतर मनुज समाज
वाहर से सघर्ष प्रस्फुटित
भीतर में है मद का राज

हर प्राणी मे आत्मा की स्थिति
आत्मा आत्मा सभी समान
ऊच-नीच का भेद कल्पना
अतरिक्ष का सदृश वितान

आत्मा की निर्मल धारा से
हुआ प्रवाहित समता वोध
कसे हो वह मान्य अह को
करनी होगी गहरी शोध

चौदहवाँ सर्ग

दूत-सम्प्रेषण

लोकस्य काम्या विजया जनेषु
तन्त्रेषु विद्या प्रथमा धरत्र्य
यत्रापदिष्टा विजयी निजेषु
भावेषु भूयाद् शपथो जयाय।



दिग्वधू के मुख कमल पर
नयनहर मुस्कान है
हर्ष की उत्ताल ऊर्मी
का नया प्रस्थान है

विजय की उल्लास रेखा
खचित उन्नत भाल पर
हस रहा नभयान मृग की
गगनचुवी चाल पर

बदल जाता दृश्य पल मे
यह जगत की रीति है
बादला मे पवन-पथ मे
अनकही सी प्रीति है

दिवस का अनुगमन करती
रात यह विख्यात हे
कौन ऐसा मनुज जिसको
दृष्ट सिर्फ प्रभात हे

एक ओर विनीत जनता
से बधाई मिल रही
अमृत का अभिषेक पा मन-
सुमन कलिका खिल रही

शात सेनापति खडा हे
सामने बद्धाजलि
मोन वाणी किंतु आकृति
पर मुखर भावाजलि

भरत

विजय की माला पहन कर
भी सुषेण! उदास हो?
तृप्त है हर कोशिका फिर
कंठ मे क्यो प्यास हो?

सफलता के शिखर को तुम
छू रहे हो शक्ति से
किंतु बचना चाहते हो
विजय की आसक्ति से

विजय या उन्माद दोनो
एक-अथक नाम है
ऋषभ के संदेश ही बस
शांति के आयाम है

चक्रवर्ती की प्रतिष्ठा
से तरंगित चित्त है
बदरो की चपलता ही
चपल का इतिवृत्त है

सुषेण

विजय की आसक्ति से मै
मुक्त हू स्वामिन्! कहा?
विजय की आसक्ति से हो
युक्त आया हू यहा

कौन हिमगिरि के शिखर पर
देव! अब आरूढ है?
दिशा-सूचक यत्र कैसे
हो रहा दिग्मूढ है?



भरत

आज सेनापति! तुम्हारी
भार-भाषा काव्य है
क्या कहीं कोई अकल्पित
समर फिर सभाव्य है?

सुषेण

देव! यह जीवन मनुज का
सहज ही सग्राम है
और अपनी अस्मिता का
पुण्य प्राणायाम है

भरत

तृप्त होती समर देवी
प्राण का बलिदान ले
वह समर कैसे मनुज को
प्राण का आयाम दे?

निज अह को पुष्ट करने
की महेच्छा युद्ध है
रक्त-रजित भूमि नर की
क्रूरता पर क्रुद्ध है

युद्ध पर-अस्तित्व का
प्रत्यक्ष अस्वीकार है
तत्र है परतत्रता का
सृष्टि का सहार है

चाहते हो यदि भलाई
मनुज की, ससार की
शस्त्र बस शोभा बढाए
स्वस्ति शस्त्रागार की

सुषेण

देव! उलझन चक्र की वह
नगर बाहर अचल है
यत्न शत-शत किन्तु अपनी
पकड पर ही अटल हे

दे रहा है सूचना रिपु
आज भी अवशेष हे
फिर बजेगी समर-भेरी
अजित कोई देश है

भरत

विजय का आकाश साक्षी
ओर साक्षी है धरा
द्वन्द्व का सागर सुदुस्तर
तर गए प्रतिदिक् वरा

चक्र क्यो बाहर रुका फिर
क्यो न पुर मे आ रहा?
क्यों न शस्त्रागार का
अधिमान शीश चढा रहा?

मन्त्रिवर! सन्मार्ग खोजो
बुद्धि का यह धर्म हे
सफलता की सूत्रणा का
मत्रणा ही मर्म है



कोन सा कोना वचा है
विजय के अभियान मे?
कोन ऐसा नृपति अव भी
लिप्त हे अभिमान मे?

मत्री

मन्त्रिवर बोला प्रणत सिर
ज्ञात कितु अवाच्य है
ज्ञेय का विस्तीर्ण सागर
अल्पतम ही वाच्य है

मोन है सर्वार्थ साधन
नीति का निष्कर्ष है
शातिपूरित सव दिशाए
प्यास का उत्कर्ष है

भरत

मन्त्रिवर' क्यो यामिनी के
पक्ष म तुम जा रहे?
आवरण तम के वदन से
क्यो न शीघ्र उठा रहे?

आज ही क्यो मोन का व्रत
वोलना क्या पाप है?
यह अहेतुक वचन-सवर
क्या नहीं अभिशाप है?

यदि समस्या के क्षणो म
सचिव ही सन्यास ले
रोहितक का फूल वनकर
सुरभि का आश्वास दे

ऋषभ-सुत के सचिव हो तुम
स्थान गरिमापूर्ण है
देख लो सोलह कला से
चन्द्रमा परिपूर्ण है

मन्त्री

चाहता हू मै कला से
सकल सफल बना रहू
मान है आलम्ब उसका
कर्ण-कटु मै क्यो कहू?

इष्ट है प्रिय सब जनों को
हित निरा उपचार है
बात अप्रिय दो दिलो के
बीच का प्राकार है

भरत

अभय देता हू कहो सच
भूमि ही आधार है
गगन-यात्रा का निसर्गज
पख को अधिकार है

कटुक ओषध प्रिय नहीं पर
क्या न हितकर बिंब है?'
चन्द्रमा का बिंब नभ मे
सलिल मे प्रतिबिंब है

सत्य सुनना चाहता हू
बुद्धि का वरदान है
सत्य भावित बुद्धि का वर
पुष्प नित अम्लान है



आज क्यो सकोच इतना?
हेतु मूल अगम्य है
दृष्टि निर्मल विश्व का हर
कोण हर कण रम्य है

मत्री

सत्य कहना चाहता पर
प्रेम मे विश्वास है
वन्धुता म विघ्न वनना
कुटिलता का पाश है

नयन-युग मे द्वन्द्व हो यह
स्वप्न ही आतक है
निज अनुज के सामने
भुजदण्ड केवल पक है

भरत

वाहुवलि है अजित मत्री!
क्यो यही तात्पर्य है?
वधुवर से युद्ध करना
क्या नहीं आश्चर्य है?

ऋषभ पुत्रो में कलह हो
मान्य मुझको है नहीं
चक्र रूठे, रूठ जाए
वन्धु तो वह है नहीं

मत्री

मोन रहना श्रेय हे यह
देव! पहले कह चुका
वेगमय हे सलिल धारा
तीर वन मे रह चुका

शांति का म पक्षधर हू
किन्तु उसका अर्थ है
एकपाक्षिक वधुता का
अर्थ सिर्फ अनर्थ हे

स्नेह की सरिता प्रवाहित
एक ओर अशेप हे
फूल परिमल रहित अवरज
दर्प का आवेश हे

देश आर विदेश मे यह
वात अति विख्यात हे
भरत से भी वाहुवलि का
बाहुवल अवदात हे

जनपदों को जीतने मे
शक्ति का व्यय क्यो किया?
क्या जलेगा चक्रवर्ती
पीठ का स्नेहिल दिया?

वाहुवलि को जीतने का
स्वप्न क्यो देखा नही?
शेप सव नृप विदु केवल
एक हे रेखा यही



सर्वजित् की पद-प्रतिष्ठा
देव! आज अपूर्ण है
पूर्ण का सकल्प हो यह
सुरभि वासित चूर्ण है

स्तोक सा वक्तव्य देकर
मान मत्री हो गया
अर्थ का गाभीर्य देकर
शब्द नभ म खो गया

भरत

तर्क है बलवान केवल
भावना का द्वन्द्व हे
शब्द से व्यवहार चलता
कोन फिर निर्द्वन्द्व है?

सोच मे परिवर्त आया
नर विचित्र स्वभाव है
बधु के सबध की मझ-
धार मे अब नाव है

बाहुबलि की नम्रता मे
उचित ही संदेह हे
उचित हे आरोप तेरा
एकपक्षी स्नेह है

ज्येष्ठता का भूमि-नभ मे
सर्वदा सम्मान हे
अनुज के व्यवहार मे तो
झलकता अभिमान हे

प्रणत है पट्खड भूपति
अनत केवल भ्रात ह
रात कैसी सव दिशाओ
मे प्रभास्वर प्रात है

पर नहीं वश म विवश वह
पूर्णत परतन्त्र है
सिर्फ पर को शक्ति दे वह
मन्त्र कैसा मत्र है?

युद्ध करना अनुज से यह
धर्म-सकट स्पष्ट है
अनुज आज्ञा का न माने
क्या नहीं यह कष्ट है?

पाश दोनो ओर इससे
मुक्त होना श्रेय है
हित बड़ा ह इस जगत मे
प्रेय आखिर प्रेय है

समर घरम विकल्प उसको
स्थान यदि पहला मिले
तो मधुर सवध-तरु पर
सुरभि-सुम कैसे खिले?

दूत जाए वाहुवलि के
पास मम संदेश ले
सुलझ जाए गाठ यदि वह
वात पर ही ध्यान दे



दूत को आकठ शिक्षित
ओर पटु दीक्षित किया
मर्म को जा छू सके वह
स्नेह-युत सवल दिया

प्राप्त कर मति ओर सम्मति
हो रहा प्रस्थान हे
नियति का आलेख अस्फुट
विजय का अनुमान हे

युद्ध या सघर्ष का हल
काल का व्यवधान हे
मौन का आलव लेना
शांति का सम्मान हे

वेग या आवेश की
सजीवनी तत्काल हे
प्रशम के पल मे प्रतीक्षा
का समुन्नत भाल हे

दूत का प्रस्थान

परिकरित परिवार से नय-
निपुण वाक्पटु दूत है
धीर वीर सुवेग नाम्ना
कर्म से अवधूत हे

नव अभिक्रम के लिए
नगरी विनीता से चला
देश वहली की दिशा मे
आम्र सहसा ही फला

जन-प्रवाद

कौन यह नृप जा रहा है?
नृप नहीं, यह दूत है
किसलिए भरतेश का
आसक्तिमय आकूत ह

वाहुवलि को जीतने की
लालसा उद्दाम है
कामना से ग्रस्त अग्रज
अनुज तो निष्काम है

भरत ने जीते सभी नृप
वाहुवलि सतुष्ट है
चाह की कव थाह सागर
तीर से क्या तुष्ट है?

'लोभ वढता लाभ से यह
सूत्र शाश्वत सत्य है
भरत का अभियान होगा
फल-रहित यह तथ्य है

कटुक लोक-प्रवाद सुनकर
दूत का मन खिन्न है
निज नृपति के विपय मे हा
क्यो न जन मन खिन्न है?

वाहुवलि की कीर्ति-गाथा -
क्या यहा औचित्य है?
धारणा क्यो भरत तारा
वाहुवलि आदित्य है



गहन चितन-प्रसर फिर भी
दूत वर गतिमान है
गति प्रगति का प्रथम लक्षण
अगति पर्यवसान है

शकुनि गण का मजु कलरव
श्वास परिमल का लिया
स्वागत वहली धरा पर
मृदुल किसलय ने किया

कृषक निज-निज खेत मे
खलिहान मे सलग्न है
सिद्ध योगी भावनामय
साधना मे मग्न है

बाहुबलि की सुयश गाथा
गा रहे है भक्ति से
भीतरी अनुरक्ति पावन
उपजती है शक्ति से

सफल वातावरण श्रद्धा-
सिक्त अति सम्मान है
अमल ज्योत्स्ना पूर्णिमा के
चन्द्र का अवदान है

वृत से आवद्ध कलि का
फलित पुष्प पराग है
एकता का सहज अनुभव
प्रेम का अनुभाग है

दूत का जिज्ञासित सुन
गाव के जन ने कहा
वाहुवलि का तेज अतुलित
सूर्य यह पीछे रहा

दे रहा आलोक केवल
ताप से वह मुक्त है
यह धरा वर चन्द्रमा की
चादनी से भुक्त है

नाथ एक, सनाथ हम सव
भूमि सवके पास हे
वरसता ह जलद समुचित
श्रम जनित उल्लास है

तन अरुज हे, मन अमल हे
स्वस्थतम सवध हे
भार है अत्यल्प दृढतम
स्कध का अनुवध हे

देश वहली वाहुवलि नृप
द्वैत मे एकत्व है
स्वत्व कण-कण मे उछलता
हर नयन मे सत्त्व हे

दूत के आगमन से भय-
भीत तक्षशिला नहीं
अभय की उत्सर्पिणी म
नवल सुपमा ही रही



रुक गया रथ द्वार पर
संदेश प्रहरी ने दिया
दूत आया हे प्रतीक्षा
ने प्रशम रस हर लिया

धेर्य का तट-वध स्वामी।
टूटता सा दिख रहा
मिलन हो अविलब उसने
नम्र स्वर मे है कहा

बाहुबलि

दूत आया है कहा से?
किसलिए आया यहा?
पूर्ण विवरण चाहता हू
आर सप्रति वह कहा?

प्रहरी

आ रहा हे मातृ-भूमी
वर विनीता धाम से
भरत का संदेश देने
के लिए आराम से

द्वार के परिपार्श्व मे वह
प्रभु। प्रतीक्षालीन है
अतल तल मे वास फिर भी
आज प्यासी मीन हे

लग रहा उत्साह मन में
ओर ऊर्जा पीन है
झाकती हे दीनता भी
सकल दृश्य नवीन है

बाहुबलि

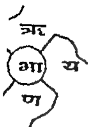
त्वरित लाओ मातृभूमी
नाम मे माधुर्य है
विशद माटी के कणो मे
स्नेह का प्राचुर्य है

दूत समुपस्थित हुआ नत
शीश अजलिवद्ध है
तेज से अभिभूत मानस
भाव से सन्नद्ध है

दूत! आए हो अयोध्या
से कहो केसे रहा?
देश वहली की धरा ने
स्वागत जव-जव कहा

तव हुई होगी युगल की
एकता साक्षात सी
प्रस्फुटित है अमल आभा
रात में भी प्रात-सी

कुशल कोशल देश में है
स्वजन जन-जन कुशल है?
विजय यात्रा से समागत
भरत भाई कुशल है?



मुदित है मन आज मेरा
गान पुलकित हो रहा
सकल जागृत हो गया जो
स्मृति-पटल पर सो रहा

उन दिनो की याद मे ही
अमृत जेसा स्वाद हे
स्वाद की अनुभूति मे जनु
ले रहा आह्लाद हे

अक यह पर्यंक जेसा
तात का उपलब्ध था
मै प्रथम आसीन होता
भरत उससे स्तब्ध था

भरत जव आसीन होता
श्री पिता की गोद मे
दूर कर देता उसे मे
शिशु सुलभ आमोद मे

मत करो अविनय अवज्ञा
भरत तुम से ज्येष्ठ है
रोक देते तात मुझको
वचन वेभव श्रेष्ठ है

एकदा आरूढ गज पर
भरत लीला-लीन था
दृष्टि सुरपथ पर टिकी थी
दर्प से आसीन था

पादचारी मे प्रवर की
दृष्टि से ओझल रहा
शौर्य के संदेश को तव
मौन ही पढता रहा

चरण कर मे ले उछाला
भरत को आकाश मे
प्रेम ने सहसा पुकारा
हृदय के अवकाश मे

हत! अग्रज वधु के प्रति
क्या उचित व्यवहार है?
बाहुबल की श्रेष्ठता का
क्या यही उपचार है?

प्रेम के स्पदन बढे युग
हाथ ऊपर उठ गए
झेलने की बनी मुद्रा
दृष्टि अपलक पल नए

बाल-क्रीडा निरत बालक
गेंद जैसे झेलता
भरत को झेला अधर में
स्नेह की कोमल लता

क्या अकेले के लिए ही
इक्षु रस का पान है?
क्या नही निज अनुज के प्रति
स्नेह का आस्थान है?



छीन ली सहसा भरत से
इक्षुयष्टि रसावहा
मौन था भाई कहा जो
अश्रुधारा ने कहा

तात ने दो खड कर
सभाग दोनो को दिया
द्वैत मे अद्वैत का रस-
पान तव हमने किया

बाल लीला की कहानी
मधुर मधु के तुल्य है
उन दिनो की उन क्षणो की
याद अमिट अमूल्य है

वह अयोध्या शाति जिसका
प्राणमय उच्छ्वास है
ऋषभ का वह पीठ पावन
बोलता विश्वास है

साथ वह शत बधुओ का
स्मृति-पटल पर वृत्त है
उस सुखद घटनावली से
मुदित मेरा चित्त है

आगमन तव भूत क्षण को
कर रहा प्रत्यक्ष है
हो रहा साक्षात मानो
प्रभु ऋषभ का कक्ष है

तात ने दे राज्य बहली
दूर मुझको कर दिया
किन्तु स्मृति ने आज सारे
अतरो को भर दिया

भरत ने भेजा तुम्हे क्यो
क्या नया सदेश हे?
अनिल कैसे चल रहा है
क्या नया आवेश हे?

मापना गति वेग हय का
सरल है अति सरल हे
वेग मन का पवन से भी
शीघ्रगामी तरल है

दूत

भरत ने की विजय यात्रा
देव! सबको ज्ञात हे
विजय-उत्सव बधुजन को
हो रहा अज्ञात है

ज्ञात होता तो भरत से
दूर सब रहते नहीं
क्या विनीता पहुच कर
दो शब्द मधु कहते नहीं?

पा निमत्रण दूत गण से
खिन्न मानस हो गए
बधु-सोदर प्रभु-शरण मे
लीन मुनि वन हो गए



आप ही है शेष केवल
गहनतम चिंतन करें
छोड पूर्वाग्रह नवोदय
वृत्त का सर्जन करें

स्वजन ही बनता समस्या
नीति का नवनीत है
नीति के मर्मज्ञ की तो
हार मे भी जीत है

तार को ज्यादा न तान
तथ्य को पहचान लें
आपका बन कह रहा हू
बात मेरी मान ले

अनुज का कर्त्तव्य अग्रज
के प्रति प्रणिपात है
हत। अविनय की प्रतिष्ठा
मे पुरोधा भ्रात है

नीति से प्रतिबद्ध होता
नृपति न च परिवार से
मुकुट मे है पुष्प कोमल
कर निभृत असिधार से

नीतिमय सदेश नृप का
देव। अतिशय स्पष्ट है
मानता हू स्पष्ट की श्रुति
अनकहा सा कष्ट है

मुकुट-मणिवत शीश पर
श्री भरत की आज्ञा रहे
सार है वक्तव्य वह जो
स्वल्प म सब कुछ कहे

इन्द्र जिसको अर्ध आसन
दे रहा सम्मान से
मूल्य उसका आक सकता
हर मनुष्य अनुमान से

प्रश्न मेरा बधु-गण ने
मूल्य-अकन कब किया?
चक्रवर्ती को पदोचित
मान किसने कब दिया?

नृपति की तेजस्विता का
आवरण परिवार हे
सुत स्वजन का मोह मधु से
लिप्त असि की धार है

विश्व विजयी भूमिपति का
हो रहा उपहास हे
बधु जन की विफलता का
यह अगम इतिहास हे

चक्रवर्ती चक्रवर्ती
भूप आखिर भूप हे
सिधु का विस्तार अपना
कूप आखिर कूप है



धैर्य है सम्राट का जो
सह रहा है आपको
सह न सकता शक्ति विकलित
नर हुताशन ताप को

देव! प्रार्थी हू क्षमा का
कर्णकटु यदि कह गया
विनय की अनुशासना म
पृष्ठगामी रह गया

विज्ञ है प्रभु! दूत का
कर्त्तव्य हित की दृष्टि है
तथ्य मूलक वचन से ही
सघन हित की सृष्टि है

बाहुबलि

दूत! वाक् पटुता तुम्हारी
दे रही आह्लाद है
ज्येष्ठ भ्राता के अह का
अलग ही आस्वाद है

स्मृति अनुज की विजय-उत्सव
के क्षणों मे ही हुई
विजय यात्रा के क्षणों म
प्रीति भीत छुईमुई

ज्येष्ठ में यदि ज्येष्ठता हो
विनय बहुत प्रशस्य है
ज्येष्ठ गुरु-गुणविहीन हो तो
विनय मे वैरस्य है

पुष्प यह मकरद-विरहित
वृत से आवद्ध हे
भ्रमर-गण के शक्ति से
आकर्प म सन्नद्ध हे

तात से हमने पढा हे
पाठ निज अस्तित्व का
ओर स्मृति पर उभरता है
पाठ वह कर्त्तृत्व का

वढ रहे हे चरण पथ पर
दूत! वे केसे रुके?
नय-परिष्कृत सिर अनय के
सामने केसे झुके?

तात का आदेश हमको
पूण मन से मान्य हे
जलद की जलधार से
अभिषिक्त होता धान्य हे

अग्नि के आताप मे क्या
फसल वढती है कभी?
आक भी हिमदाह-वल से
पलक मे जराते सभी

भरत के आवेश को उप-
शात करने की कला
जानता हू, मानता हू
भरत से निज को भला





भद्रता का मूल्य-अंकन
सहज युद्ध विराम है
दर्प का परिमार्जन ही तो
युद्ध का आयाम है

स्वतन्त्रताया अमलं हि चक्षु
उद्घाटितं यन्न तपायत्नैर्न
म नाभिजाता भयतान्त्रनाना
अतद्दृशामुच्चरितमनाय नियम्॥

श्रीमत्प्रभावाणं वाह्यलय दृगप्रपणनामा
चतुर्दशं सर्ग

सर्ग २५

पच्चीसवाँ सर्ग

युद्धभूमि में समागम

[illegible]



भरत

तुम गए [illegible] दूतवर! आये हो
संदेश [illegible] का [illegible] क्या नाथ हो?
क्या सुखद रही यह तक्षशिला की यात्रा?
बहली में कमी है वैभव की मात्रा?

ऊर्जस्वल बाहुबली का क्या मानस है?
रग रग में अतिशय स्वाभिमान का रस है?
क्या सूर्यमुखी अब रवि के अभिमुख होगा?
क्या सूर्यविकासी पुन विकस्वर होगा?

क्या नीलकंठ का वाद्य स्वर बदला है?
क्या तम प्रभात के दर्शन को निकला है?
अनुकूल पवन की कोई नई कहानी
चलती न किसी की इस जग में मनमानी

सुवेग

हे आर्य! आपकी रस से पूरित भाषा
सुनने को मेरा मन है प्रतिपल प्यासा
सिर पर है प्रभु का हाथ सुरक्षित हम हैं
चक्री के परिकर से परिलक्षित हम हैं

प्रभुवर! इस यात्रा के कुछ नए नजारे
जो कभी न देखे न सब चित्र निहारे
अब भी कानों में गूंज रही है वाणी
बहली जनपद के वैभव की सहनाणी

है स्वामी के प्रति पूर्ण समर्पित सारे
नव शौर्य गगन के तेजोदीप्त सितारे
हे नाथ! अयोध्या जनपद हमको प्यारा
बहली जलनिधि का है रमणीय किनारा

है जागरूक जन, श्रम मे गहरी निष्ठा
स्वातत्र्य प्रेम की प्रतिमा प्राप्त-प्रतिष्ठा
स्वाधीन चेतना का पलडा है भारी
परतत्र शब्द से चिढता हर नर-नारी

जैसा शासक जनता भी वैसी होती
दीपक से दीपक की प्रगटी है ज्योति
मोती मे पानी स्वामी! दीख रहा है
हर शिशु गौरव की गाथा सीख रहा है

सकेत साफ है अनुज नहीं आएगा
अभिमान व्यूह को भेद नहीं पाएगा
दोनो के सम्मुख एक विकल्प बचा है
इस अहकार ने समर निवेश रचा है

सशय से दोनो ग्रस्त हुए है भाई
प्राय: होती है सशय-जन्य लडाई
श्रद्धा ने हिम के कण-कण को जोडा है
सशय ने मन के कण-कण को तोडा है

भरत द्वारा आत्म-निरीक्षण

क्या मैने सम्यक् चिंतित कदम उठाए?
अथवा अबर मे सहसा चरण बढाए?
चिंतन धरती पर चलता है फलता है
सहसाकारी नर अपने को छलता है

क्या उचित अनुज के पास दूत को भेजा?
क्यो बना न जाने प्रस्तर तुल्य कलेजा?
वात्सल्य सलिल की धारा यदि बह जाती
तो विनय-बेल का अभिसिंचन कर पाती



मे भूल गया बल अतुल प्रचड अनुज का
विस्मृति का कुहरा हत' निसग मनुज का
ह स्थूलकाय गज किन्तु भीत मृगपति से
भाई के बल को तोला ह मति-गति से

कर पृष्ठभाग मे मुष्टि-घात म दोडा
प्रतिघात हेतु जब भाई ने मुह मोडा
तब कोध गई नभ म कापाबुद बिजली
ऊजा की बूंदे बिखरी उजली-उजली

उस महावह्नि पर शीतल जल की धारा
बरसा कर प्रभु ने मुझको सहज उबारा
है कान शोर्य मे प्रवर बाहुबलि जेसा
भाई-भाई म यह नव पल्लव केसा?

है कोन बाहुबलि के बल का विज्ञाता
भूभग दशा मे कोन बनगा त्राता?
अनुभूत सत्य को केसे म झुठलाऊ?
केसे मे सबको मन की बात बताऊ?

द्विविधा की स्थिति म केसे मुक्ति मिले अब?
सोहार्द भाव का केसे सुमन खिले अब?
चिता स क्या हो यदि चितन कर पाता
तो बधु स्वय ही दोडा दोडा आता

पर्वत सागर सरिता अतर म आए
पर बधु-युगल को पिशुन नही उलझाए
ह प्रश्न जटिलतम चक्र बडा या भाई?
बाधव जीवन की सबसे बडी कमाई

उद्गार प्रकर न सवका स्तब्ध वनाया
क्या गीत मधुर ह, स्वामी ने जो गाया?
प्रत्यक्ष हो रहा लय-स्वर का अतर ह
स्वामी का कैसा अद्भुत चितन स्तर है?

सव मान रह पर मान नही मानस हे
अतजल्पन म जल्पन का सा रस है
सनापति ने तव साहस अतुल वटोरा
साहस ही जीवन रस का कनक कटोरा

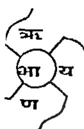
सुषेण

स्वामिन्! भाई ह आर पराक्रमशाली
प्रियता दुवलता की मति ह मतवाली
क्या मोह वधु का राजनीति सम्मत हे?
साम्राज्य प्रथम सवध अवर अनुमत ह

हे पुत्र ऋषभ का आर भरत का भाई
विक्रम की महिमा जन मानस पर छाई
चक्री सना का ताप कोन सह सकता?
यह चक्र शक्र से भी लोहा ले सकता

वे शोयमूर्ति मानव सीमात निवासी
सानिध्य दव का प्रहरण के अभ्यासी
प्रभु की सना के सम्मुख कव टिक पाए
अभिमान-अचल से उतर शरण म आए

प्रभु! तथ्य एक यह हम सबके सम्मुख हे
इस समय हवा का विजय-वरण का रुख हे
यदि एक न जीता विजय अजय के सम है
जन जन वाणी ये प्राणार्पण का दम ह



केवल सेना की सज्जा का इंगित हो
यह हार्दिक अनुनय अतस्तल-आदृत हो?
विश्वास हमारी जय प्रभु! शत प्रतिशत है
दिनकर के सम्मुख ग्रह गण सहज प्रणत है

भरत का अंतर्द्वन्द्व

संघर्ष परस्पर रवि उडुपति में होगा
नक्षत्र और ग्रह तारा का क्या होगा?
नभ की शोभा क्या अविकल रह पाएगी?
शस्त्रों की ज्वाला माला बन जाएगी

ऋषभध्वज का यह वंश महान यशस्वी
इसका गौरव है त्यागी और तपस्वी
इसने भाईचारे का पाठ पढ़ाया
मैत्री का मंगलकारी मंत्र सिखाया

इसने मानव का उन्नत भाल किया है
तिमिरावृत जन को पथ-आलोक दिया है
क्या आज तमस को वही निमंत्रण देगा?
क्या अमृत-कलश भी कलिमय विष उगलेगा?

मैं नहीं चाहता बंधु मिले अब रण में
शिक्षा प्रभुवर की अंकित है कण-कण में
आग्रह के ग्रह से ग्रस्त सकल अधिकारी
उनको घर से भी समर भूमि है प्यारी

यह द्वन्द्व चेतना कहती मौन रहूं मैं
प्रिय अप्रिय घटना को सायास सहूं मैं
देती है जो अभिव्यक्ति मौन की भाषा
शब्दों में उसका किसने अर्थ तलाशा?

गूंजी पल भर मे भैरवतम रण-भेरी
अभियान सैन्य का तत्क्षण हुई न देरी
उभरा चिंतन यह परम विजय की यात्रा
प्लुत उच्चारण की दिग्-दिगंत मे मात्रा

बहली की सीमा सम्मुख दीख रही है
जैसे छाया घन तन्मय सीख रही है
एकांत कांत रमणीय धरा मे बल है
चल घटना मे भी धृति परिपूर्ण अचल है

बहलीश्वर का सवाद मिला है चर से
अपने घर को भय उपजा अपने घर से
अब समरागण ही शेष विकल्प बचा है
इस नियति चक्र ने कैसा व्यूह रचा है?

रण की दुंदुभि से पूछा सैनिक गण ने
क्या आज कसौटी की है इस अर्पण ने
हे मौन बली, किसका भुज बल दूषित है
बल बहलीश्वर के चरणो मे अर्पित है

सकल्प विकल्पो का बुन ताना-बाना
आक्राता है भरतेश्वर सबने जाना
क्या ज्येष्ठ श्रेष्ठ होता यह मान रखा है?
मृगतृष्णा का किस जन ने स्वाद चखा है?

बल अतुल बधु का ज्ञात भरत को होगा
फिर कैसे पहना दु साहस का चोगा?
खद्योत कहा प्रद्योत कहा क्या बोले?
कैसे अतर् मानस के पट को खोले?

स
र्ग
१५



जय के निश्चय न गति का त्वरित किया हे
मन की लहरा न मति को जन्म दिया ह
पहुची सीमा पर उत्सुकता की धारा
चमकेगा वहलीश्वर का भाग्य सितारा

ह पृष्ठभूमि म सस्थित दोना भाइ
सेना दाना की पार्श्वभूमि पर आइ
लडन म रस की मनोवृत्ति मालिक ह
पिक स काआ, काए स पलता पिक ह

मानव दुनिया का हे सुन्दरतम प्राणी
आकृति दर्शन से जन्मी ह यह वाणी
विज्ञान प्रकृति का कहता अमर कहानी
भीतर वेश्वानर ऊपर-ऊपर पानी

मैत्री से पुलकित मानव ही सुन्दर ह
वह केसे सुन्दर, जिससे सवको डर हे?
मस्तिष्क मनुज का रण का पहला स्थल है
समरागण उसकी छाया या प्रतिफल हे

यदि भरत मनस म रण का वीज न वोता
ता समर भूमि म वहलीश्वर क्यो होता?
अव फसल काटने की होगी तेयारी
हे तीन लोक से रण की मथुरा न्यारी

जव भाई-भाई के शोणित का प्यासा
तव सेना से क्या हा मत्री की आशा?
मानव मानव को घायल कर खुश होता
मानवता घायल होती भूधर रोता

वाग्-युद्ध का प्रारम्भ

पहले शब्दो से युद्ध लडा जाता हे
फिर शस्त्रो की धारा से गहराता हे
तीखे शब्दो के तीर परस्पर पाती
जो बींध डालते बिना लोह के छाती

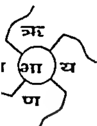
कसी कायर हे भरत नृपति की सेना?
क्या सभव पत्थर की नाका को खेना?
क्या उपल खड वन रण म सुभट खडे हो?
पहली की सेना से क्या व्यर्थ अड हो?

क्या दुबल का विजय-श्री वरण करगी?
क्या घोर अमावस तम का हरण करेगी?
रवि बनकर आओ यह तो समरागण हे
क्या समझ रखा इसको घर का प्रागण ह?

वाग्-युद्ध छिडा पौरुष का वेग बढा है
मध्याह्न समय का सूरज गगन चढा हे
अब देहिक बल की होगी प्रखर कसौटी
किसके हाथो म होगी रण की।चोटी?

आरभ शस्त्र-युग का निर्माण कला का
मन की विभीषिका मे अभिनय प्रचला का
भुज-दड दड से भी अतिशय ऊर्जस्वी
सचालक सचालित से अधिक यशस्वी

नि शस्त्र शस्त्र है सिहनाद की विद्या
शस्त्रो को कपित कर देती हे हृद्या
प्राणिक ऊर्जा से मन का पौरुष जागा
इस द्वन्द्व युद्ध का वह गरिमामय धागा



चक्री ने सेना का समवाय बुलाया
रण की भीषणता का सबोध कराया
तुम मत अतीत म वर्तमान को झाको
इस वर्तमान को वर्तमान मे आको

गभीर वनो यह युद्ध नहीं साधारण
देखो अपना मुख प्रस्तुत है यह दर्पण
वल प्रवल वाहुवलि का पोरुप इठलाता
साहस भी सम्मुख आने मे कतराता

निश्वास शक्ति का उचित प्रयोग करोगे
सर्वोत्तम सेना होने का यश लोगे
अनुकूल पवन का योग जलद ने पाया
सेना का विक्रम ध्वज वन कर लहराया

बाहुबली

यह पहला अवसर युद्ध सामने आया
भाई आक्राता अलख विश्व की माया
आक्रमण हमारा कोई ध्येय नही हैं
अस्तित्व सुरक्षा नित आदेय रही हे

सकल्प हमारा पावनतम दृढतम हे
क्या सूर्य डरेगा यद्यपि गहरा तम है
विश्वास जमाए श्वास-श्वास मे आसन
वस सावधान वल से आपूरित तन-मन

साम्राज्यवादस्य मन प्रवृत्ति
न वीक्षतेऽन्यस्य हिताहित च
तेनात्मराज्यस्य दिशा प्रशस्ता
कृताऽद्य भूयाद् ऋषभ शिवाय।।

श्रीऋषभायणे भरतस्य बाहुबलेश्च युद्धभूमौ
समागमनामा
पञ्चदश सर्ग

स
र्ग
१६

सोलहवा सर्ग

भरतबाहुबलियुद्ध-वर्णन

सामाजिकं जीवनमस्ति कामं
संघर्षपूर्णं विविधाशयाप्तम्
तत्रापि शान्तेर्नवबीजमुप्तं
धाता विधाता वृषभो वरेण्य ।।



वीज वृक्ष वन सकता, वनता
जव होता उसका प्रस्फोट
लेता है आकार पराक्रम
होती ह जव उस पर चोट

तीर वचन का लोह-तीर से
अधिक वींध देता हे मम
साधारण ससद से होता
भिन्न समरभूमी का धर्म

चक्री की सेना म सहसा
उदित हुआ अतिशय आवेश
किया वाहुवलि की सेना म
आक्रामक उद्दाम प्रवेश

हुआ पलायन पवनवेग से
वहलीश्वर ने देखा सर्व
तना भृकुटि का देश चक्षु म
उतरा अरुण वर्ण का पर्व

युद्धभूमि मे जान को द्रुत
हुआ वाहुवलि का प्रस्थान
प्रणत सिहरथ वोला, यह तो
चींटी पर गज का अभियान

तनय उपस्थित लडे पिताश्री
यह केसा ह विनय प्रयोग?
सव समथ हम भरत-सैन्य को
कर देगे अति शीघ्र निरोग

वढा सिहरथ का रथ आगे
वढा मनोवल अमिताकार
टिम-टिम करते ज्योति दीप मे
हुआ तल का नव सचार

सिहनाद से हुआ प्रकपित
भरतेश्वर का सेना चक्र
किया पलायन योद्धा गण ने
कौन? वाहुवलि अथवा शक्र?

देख परिस्थिति मद मदतर
सेनाधीश सुषेण महान
आगे आया, जागा चक्री-
सेना का सोया अभिमान

युद्ध-स्थल मे हार जीत का
अभिनय होता हे अनिमेष
किया वाहुवलि की सेना मे
सेनापति न सहज प्रवेश

आज मिला है प्रथम वार ही
चितन को अभिनव आयाम
वहलिधरा से वाहर भी ह
शौर्य-वीर्य का अनुपम धाम

वहलीश्वर की सेना को ही
प्राप्त पराक्रम का वरदान
मान रखा था वह चितन तो
हुआ कूप मडूक समान



अनिलवेग विद्याधरपति ने
किया सवत प्रतृत्व प्रदान
रुका पलायन मिला सैन्य को
वीय प्रदर्शन का आह्वान

विद्यावल के सम्मुख भुजबल
खो देता है अपना अर्थ
चक्री की सेना ने सोचा
अब तो लड़ना लगता व्यर्थ

रुकी प्रगति प्रतिगति के पथ मे
हुआ अचानक ही हिमपात
किया बाहुबलि को मन ही मन
चक्री सेना ने प्रणिपात

अनिलवेग बोला सेनापति!
भरत सैन्य मे तुम हो वीर
किंतु नहीं देखा तुमने है
सागर का परवर्ती तीर

नही जानते क्षीर-नीर के
मिश्रण मे है कितना नीर?
इधर क्षीर है उधर नीर है
देखो यह अनुकूल समीर

युद्ध विजय से उपजा है यह
अहंकार का रोग असाध्य
नही विश्व मे कही चिकित्सा
मम विद्या बल से वह साध्य

दुर्वल जन को किया पराजित।
यही विजय क्या सेनानाथ।
किया नही उपयोग शक्ति का
चले शून्य मे दोनो हाथ

मोन करो अव अनिलवेग। तुम
वहुत अनर्गल किया प्रलाप
छलना की वैतरणी मे रे।
केसे धुल पाएगा पाप?

तुम क्या जानो चक्री का वल
और चक्र की शक्ति असीम
पारिजात का तुम्हे पता क्या
वहलि-धरा पर केवल नीम

लब्ध नीम से कडवाहट है
नहीं दृश्य हे गुण का व्यूह
खडा किया है तुमने सचमुच
कायरता का एक समूह

वाणी के इस महासमर से
प्रस्फुट दोनो मे आवेश
विद्यावल के धाराधर से
विजली ने पाया सदेश

दोनो का भुजवल विद्यावल
अवर धरणी को अज्ञात
ज्ञेय और अज्ञेय जगत् म
सकल्पित है नया प्रभात



क्षण म भू पर, क्षण म नभ म
क्षण म रथ पर, क्षण मे स्फाल
सर्वव्यापी रूप बना है
स्वेद बूद से स्नेहिल भाल

अनिलवेग ने सेनापति के
किया धनुष का पल मे ध्वस
मद से मत्त मतगज से ज्यो
उन्मूलित हो जाता वश

क्षणिक पराजय से सेनानी
हुआ हतप्रभ हुआ अवाक्
बना अचितन चितन सारा
लवण रहित पत्ती का शाक

शेष रहा आवेश क्लेशकर
कर में देवाधिष्ठित अस्त्र
अनिलवेग के लिए निशिततम
सेनानी आया बन शस्त्र

बना सिहरथ ढाल मध्य म
रोका सेनानी का वेग
अनिलवेग को मिली सुरक्षा
व्याप्त हुआ सबमे आवेग

दोनो मे सघर्ष प्रबलतम
नहीं सका दिनमणि भी देख
अस्ताचल के अचल पर जा
लिखा नियति का नव आलेख

समरागण की मर्यादा ने
दिया सुभट गण को विश्राम
कर विलीन तम मे शात्रव को
पहुचे अपने-अपने धाम

दिनमणि आया उदयाचल पर
महिमा-मडित हुआ प्रकाश
पुराकाल मे योद्धा गण को
रजनी देती थी अवकाश

हे प्रकाश! तुम बहुत कात हो
किंतु नही हो प्रिय निरपेक्ष
परिवर्तन के लीलागृह की
सब क्रीड़ाए है सापेक्ष

अनचाहा यह सूरज आया
अलसाई आखों मे रोप
थके हुए अवयव-अवयव ने
प्रगट किया अतिशय आक्रोश

किया सिहरथ ने सुस्वागत
सिहवर्ण को लेकर साथ
आओ सेनापति! तुम आओ
सुचिर प्रतीक्षारत ये हाथ

दिव्य शस्त्र से सज्जित होकर
सम्मुख आया सेनाधीश
सिहनाद से किया प्रकंपित
बहलीश्वर सेना का शीश



पुन पलायन का क्षण आया
दिया सिहरथ ने आधार
सिहकर्ण ने विद्यावल से
सेनानी पर किया प्रहार

साक्षी रवि वन रहा कोन भट
विजयश्री का हे प्रिय पात्र?
सशय-सकुल स्वय जयश्री
किसका वज्र विनिर्मित गात्र?

अवसर का अपना वल होता
कभी शकट मे होती नाव
कभी नाव मे शकट उपस्थित
नियति-चक्र के अनगिन दाँव

हत-प्रहत क्षत विक्षत होकर
लोटा सेनापति का यान
मानो असमय मे दिनमणि का
हुआ प्रतीची मे प्रस्थान

अवसर देखा अनिलवेग ने
प्रलय पवन का ले आकार
चक्री की सेना मे उतरा
आया अभोनिधि मे ज्वार

गजारूढ चक्री ने देखा
अनिलवेग का शौर्य-विलास
देखा अपनी सेना का वह
घोर पलायन कृत उपहास

कोपानल से ज्वलित भरत ने
फेंका दिव्य शक्तिमय चक्र
अतरिक्ष की ज्वालाओ से
विस्मित चकित हुआ सुर-शक्र

अनिलवेग की अनुश्रेणी मे
झपटा पारापत पर वाज
चक्रशक्ति पर भरताधिप की
सेना को अति-अतितर नाज

विद्यावल से किया विनिर्मित
सुदृढ वज्रपजर अभिराम
मान सुरक्षा-कवच विहग ने
लिया अभय वन कर विश्राम

तदपि चक्र की अमित शक्ति से
नहीं वचा पाया निज स्वत्व
विना साधना किए सहज ही
हुआ विसर्जित देह-ममत्व

विद्याधर रत्नारि कोप से
ज्वलित हुआ वह दृश्य निहार
पवनवेग सा आया मानो
होगा रण का उपसहार

विद्या-साधित गदा मथानी
चक्री-सेना मथन पात्र
किया विलोना हुआ विलोडित
योद्धा गण का ऊर्जित गात्र



वहलीश्वर के वल मे पल-पल
वढा अतुल जय का उत्साह
युद्धभूमि मे शत्रुघात की
वन जाती है उत्कट चाह

वध करने वाला अपराधी
माना जाता हे सर्वत्र
युद्धभूमि मे शत शत घाती
वन जाता वीरो का छत्र

देखा सेनानी ने सेना
पर होता आकठ प्रहार
आर पलायन मानस-वल का
रिपु-वल को मिलता उपहार

आच्छादित नभ श्यामल घन से
आया सेनानी नृप पास
वोल उठी अतस की पीड़ा
देव। हो रहा है उपहास

वहलीश्वर की सेना अपने
वलशाली सुभटो से पीन
ओर हमारी सेना प्रभुवर।
हे जल से निर्वासित मीन

स्वामिन्। सुत तव तुल्य वली है
देख रहे है सेना-ध्वस
अद्‌भुत कैसे रणभूमि में
पनपा निष्क्रियता का वश?

अपनेपन का मोह उदित है
अथवा कायरता का जाल?
जीत रही है छोटी सेना
हार रहा है सैन्य विशाल

शात-सिधु सा मौन भरत नृप
चितन की मुद्रा अभिराम
वचन तीर से आहत मानस
बोला सूर्ययशा उद्दाम

साक्षी होगा सविता रण मे
नये सूर्य का नव आवेश
सभी सितारे छिप जाएगे
केवल अनुज रहेगा शेष

पुलकित सेनापति का अतस
सफल हुआ अविकल आयास
रजनी ने ली विदा त्वरिततर
फैला रवि का अमल प्रकाश

सूर्ययशा शार्दूल वधु सह
आया देखा रण का अग्र
सुगति और मितकेतु भरत की
सेना के प्रमथन मे व्यग्र

सूर्ययशा के रथ को रोका
विद्याधर नायक मितकेतु
सेतु बनो तुम ऋषभ-पौत्र हो
कष्ट न देता केतु अहेतु



रुद्ध हुआ शार्दूल सुगति से
देखा रवि ने अति आटोप
शून्य गगन पर हुआ कोप का
मानो भीपणतम आरोप

नागपाश से बाधा पल म
पजर मे जेसे शार्दूल
हुआ गारुडी विद्या-वल से
मुक्त, उठा रण मे वातूल

झपटा जैसे वाज विहग पर
किया सुगति के सिर का छेद
काल-चक्र के गिरि गह्वर म
छिपे हुए हे कितने भेद?

युद्ध-शास्त्र के शब्दकोश म
करुणा-पद का निपट अभाव
उतना यश जितना वैरी के
उर मे होता गहरा घाव

शोकाकुल वहलीश्वर सेना
भरत-सैन्य मे उमडा हर्ष
हत। हत। अपकर्ष एक का
वन जाता पर का उत्कर्ष

रोपाकुल मितकेतु नृपति ने
सूर्ययशा पर किये प्रहार
तीव्र तीव्रतर और तीव्रतम
सुगति-मृत्यु का यह प्रतिकार

सूर्ययशा का अद्‌भुत विक्रम
झेल रहा विद्याधर रोष
क्रीडागण मे चतुर खिलाडी
खेल रहा जेसे निर्दोष

गर्वोन्नत सिर झुका पलक मे
नियति चरण मे ज्यो प्रणिपात
सत् असत् वन जाता मानव
रण की लीला हे अज्ञात

वहलीश्वर ने पृष्ठभूमि से
देखा सारा घटना-चक्र
कौन वनेगा वहलि देश की
ऊर्जस्वी सेना का नक्र?

सूर्य-चन्द्र से शून्य गगन यह
कैसे होगा श्री-सपन्न?
विद्याधर-द्वय विरहित सेना
आज हुई है शरणापन्न

स्वय वाहुवलि आए आगे
सिहनाद का एक निनाद
चक्रीश्वर की सेना कपित
हुआ पलायन का अनुवाद

बाहुबलि

सूर्ययशा! तुम शूर वीर हो
ऋषभवश के पहले पौत्र
वत्सलता मन के कोने मे
जाओ खोजो अपना सोत्र



समझ रखा है वधु-प्रवर ने
मम सेना को शून्य अरण्य
किंतु गुहा मे सिंह, चुकाना
होगा कितना भारी पण्य

उभर रहा है प्रेम नयन मे
कर मे है प्रियता का रक्त
शस्त्र बना है कोमल धागा
हो जाओ सहसा अव्यक्त

सूर्ययशा

महामहिम से हुआ प्रवाहित
प्रेमामृत का निर्झर दिव्य
किंतु आज लडने को आतुर
भुजा युगल है हे पितृव्य!

कलभ यूथपति गजवर के पद-
चिह्नो पर चलता है नाथ!
रण का कौशल हम सीखेगे
तेज आच से बनता क्वाथ

करुणासागर महासिंधु का
क्षीर-तुल्य यदि होता नीर
तो क्यो क्रूर काल के कर मे
होते ये संहारक तीर?

चाचाजी! ये सैनिक सारे
बेचारे करुणा के पात्र
हम सब रहते सदा सुरक्षित
और अरक्षित इनका गात्र

विनयाकाक्षी पूज्य पिताश्री'
अह-अश्न आरोही आप
अन्य सभी निर्दोष अहेतुक
सहते हे इस रण का ताप

सोच रहा हू उभय पक्ष की
सेना आज करे विश्राम
तात मिलन-भूमी वन जाए
समरागण क्रीड़ा का धाम

गरमी का अपनयन नयन से
हुआ मरुस्थल मे हिमपात
सूर्ययशा आपातभद्र तुम
ऋपभवश का यश अवदात

बुद्धिर्विशुद्धोदयते प्रबुद्धा
सा भारती श्रीयुगदेवताया
युद्धे रतानामपि मानवाना
पुनातु चेतांसि सदा शिवात्मा।

श्रीऋपभायणे भरतबाहुबलियुद्धवर्णननामा
षोडश सर्ग



सतरहवा सर्ग

भरतबाहुबलिसमर–वर्णन

आत्मानुभूति प्रवरा विभूति
यस्मात् प्रतिष्ठामतुलामवाप
योगीश्वर त विभुमाद्यमीश
वदे सदानदमय वरेण्यम्।

अग्रज! सोचो व्यर्थ हो रहा
कितना कितना नर-सहार
इसीलिए क्या लिया ऋषभ ने
सत्य अहिसा का अवतार

इसीलिए क्या पूज्य पिता ने
दी मैत्री की पावन दृष्टि
रक्तपात का दृश्य देखकर
हो प्रतिबिंबित सुख की सृष्टि

सिंचित पूज्य पिता के श्रम की
बूदो से है सकल समाज
उसको सूखा घास बनाने
आतुर है हम दोनो आज

पूज्य पिताश्री आक रहे है
पौधे के जीवन का मूल्य
हम मानव के जीवन को भी
बना रहे हे रज-कण तुल्य

क्या शोणित से धुल जाएगा
सना हुआ शोणित से वस्त्र?
नहीं वैर की ज्वालाओ को
बुझा सकेगा काई शस्त्र

अह अह से टकराता तब
उठता गरमी का वातूल
धूलि-धूसरित नयनों मे फिर
उगते हे सशय के फूल



इस सशय की कारा से कब
होगे बधुप्रवर! हम मुक्त?
ऐसे जन-धन का क्षय करना
केसे कहलाएगा युक्त?

भरत

अनुज! तुम्हारा शत प्रतिशत ही
ऋत हे, सगत है वक्तव्य
किन्तु वही वच मूल्यवान् है
जिसका अनुगामी कर्त्तव्य

छोडो इस उपदेश-कथा को
खोजो पथ जो हो व्यवहार्य
बनी हुई हे उभय-पक्ष मे
जय की आकाक्षा अनिवार्य

पीछे हटना बधु! असभव
न्याय पराड्मुख जन-धन नाश
खोल सकोगे महाग्रंथि को
क्या जागृत पूरा विश्वास?

बाहुबलि

ऋषभ पुत्र के शब्दकोश में
कहा असभव जेसा शब्द?
शस्य श्यामला भूमि बनेगी
बरसो बरसो बनकर अब्द

भरत-बाहुबलि का नया चिन्तन

विजयश्री के इच्छुक हम है
हम दोनो तक सीमित युद्ध
सैनिक गण हो केवल द्रष्टा
होगा वातावरण विशुद्ध

द्वद्व द्वद्व एकार्थक केवल
सिर्फ अकेला द्वद्वातीत
क्रोध लोभ से लिप्त मनुज नित
रहता द्वद्व तुल्य भयभीत

विजय पराजय दोनो सहचर
द्वद्व चेतना के है खेल
द्वद्वात्मक जीवनशैली के
तिल मे निहित रहेगा तेल

एकल जीवन शैली का हम
कर पाएगे नहीं विकास
मध्यम पथ खोजे हिसा का
भ्रमर न लेगा फिर उच्छ्वास

बदले हिसक रण की धारा
करें आज अभिनव प्रस्थान
कार्य हमारा समरागण को
देगा एक नई पहचान

युद्ध अहिसक होगा अब से
हम दोनो का दृढ सकल्प
दृष्टि, मुष्टि का, सिहनाद का
बाहु, यष्टि का, पाच विकल्प



युद्ध वद की करो घोषणा
सेनानी। तुम दोनो ओर
भोर प्रीति देता चातक को
देख चद्र को हृष्ट चकोर

संधि हुई हे उभय पक्ष में
प्रभु का कोई अगम प्रभाव
भरत-वाहुवलि मे ही सगर
होगा, जग का जटिल स्वभाव

हर्षित वहलीश्वर की सेना
अव निश्चित हे विजयोल्लास
स्वामी का हे वाहु वज्रमय
विफल वनेगा भरत प्रयास

चिंतित भरतेश्वर की सेना
स्वामी की है कोमल दह
अग वाहुवलि का दृढतम हें
विजय-वरण मे है संदेह

पढी मुखाकृति सेनिक गण की
सशय से आदोलित सव
भरतेश्वर के मुखमडल पर
उभरा पोरुप-मिश्रित गर्व

वचन नही कह पाता जो सच
अनुभव कह देता तत्काल
वस प्रयोग ही हो सकता है
समाधान का रूप विशाल

स्वामी से निर्देश प्राप्त कर
हुआ प्रफुल्लित जीवन प्राण
किया त्वरा से सैनिकगण ने
विस्तृत खाई का निर्माण

चक्री ने निज भुज से बाधी
एक शृखला सुदृढ प्रलब
मधुकर ने खींचा फिर भी है
सुस्थिर सुमनस का निकुरब

भरतेश्वर ने खींची साकल
खिच आए सैनिक नि शेष
अनिल वेग से आहत तरु का
पत्र छोड देते है देश

हुआ निवारण संदेहो का
सबके मानस मे उल्लास
विजयश्री का आलय होगा
स्वामी के चरणो के पास

सशय की भाषा को पढना
नेता की पहली पहचान
उसका निरसन करने वाला
होता है नेतृत्व महान

स्वप्निल रात्रि, स्वप्निल निद्रा
एक स्वप्न ही पुनरावृत्त
विजयी होगा नाथ हमारा
निर्मल सुरसरिता सा वृत्त



उत्सुकता से आपूरित है
अतरिक्ष वसुधा पाताल
प्रथम चरण मे देखा रवि ने
वधु युगल का मजुल भाल

रणभूमी अब मिलन-भूमी-सी
बनी हुई है, सब नि शक
बरस रही मैत्री की वर्षा
नहीं कहीं कोई आतक

बाहुबलि

ओ सेनानी! भाईजी का
कहा विनिर्मित है आवास?
करो सूचना अनुज प्रतीक्षा
रत है फैला अरुण प्रकाश

कहो बधु से रहो सहज ही
चितन से, चिता से मुक्त
अग्रज अग्रज, अनुज अनुज है
सत्य रहेगा कवि का सूक्त

क्यो डरता है युद्ध नहीं यह
केवल शैशव का सवाद
पूज्य पिताश्री के चरणो मे
कृत लीलाए होगी याद

बहुत दिनो से आज मिलेगे
बरसेगा नभ से आह्लाद
और स्वाद सब उपमित होते
बधु मिलन का अनुपम स्वाद

वधु-मिलन के महासूत्र का
कौन करेगा ऋत अनुवाद?

भरत का आगमन

चीर बादलों की अवली को
अन्तरिक्ष मे चमका हस
दूरी का अवरोध मिटाकर
आया अग्रज नृप अवतस

मिलन परस्पर आनंदित मन
नहीं झलकता वैर विरोध
पाया था दोनो ने प्रभु से
सम्यग् दर्शन का सबोध

जो अतीत की स्मृति म जीता
द्वेष-ग्रंथि को देता पोष
वह वंचित सम्यग् दर्शन से
मैत्री से ही अन्तस्तोष

प्रणत बाहुबलि बोला भाई।
बधु मिलन का मन मे तोष
रणभूमी में मिलन हो रहा
इसका है मन मे आक्रोश

तक्षशिला मे अग्रज आता
होता कितना स्वागत भव्य
बधुप्रवर। इस समरागण में
सिहनाद ही केवल श्रव्य



वहलिधरा आत्मीय धरा हे
इसमे सवका मुक्त प्रवेश
केवल आक्राता ही वजित
ओर आक्रमण से विद्वेप

न च चकोर का मिलन चद्र से
नहीं मिली चातक को भोर
यह सगम है हार-जीत का
क्रीडागण मे सभी किशोर

आओ भाई' बचपन का क्षण
फिर से होगा वह जीवत
पतझड का अव अत हुआ ह
देखो कितना रुचिर वसत

दष्टियुद्ध

वार्ता का रच चक्रव्यूह वर
किया अनुज ने दृष्टिक्षेप
हुआ भरत के नयन युगल मे
विद्युल्लेखा का प्रक्षेप

चक्री की अनिमेपदृष्टि से
ज्योति रश्मि का प्रति सचार
वहलीश्वर के नयन लोक ने
अग्रज से पाया उपहार

भाई भाई साथ रहे हें
चक्षु चक्षु से परिचित पूर्ण
आज नये परिचय की लिपि से
विगत वना विस्मृति का चूण

दोनो अपलक, पलकों ने भी
निश्चल रहकर दिया प्रकाश
पल भर भी स्वामी को तम का
नहीं प्रतनु भी हो आभास

बीते प्रहर न कोई जीता
नहीं पराजय का सकेत
नाटक की है अद्भुत महिमा
गृहवासी बनता अनिकेत

कष्ट हो रहा है स्वामी को
सोच किया पलको ने पात
बहलीश्वर के सम्मुख जैसे
हुआ विनय-आनत प्रणिपात

अनुजवर्य की अचलदृष्टि ने
किया उपात्त विजय का घोष
हार-जीत मे साक्ष्य पलक ही
पलका का अपना है कोष

भू-दर्शन की नहीं अपेक्षा
बधुवर्य। देखो आकाश
शिशु लीला क्या रच पाएगी
विजय पराजय का इतिहास

बहलीश्वर के व्यग बाण न
किया भरत पर तीव्र प्रहार
अन्तर्ध्वनि से आदोलित मन
बाह्य जगत् मे शब्दोच्चार

भरतेश्वर के सिंहनाद से
दिग् दिगत मे हुआ निनाद
शब्दाद्वैत सहज सत्यापित
नहीं कहीं भी वाद विवाद

भूमि कपित, कंपित तरुवर
अवरचारी भी भयभीत
कौन अभयदाता अव होगा?
अभय स्वय है शब्दातीत

प्रतिक्रिया से क्रिया, क्रिया से
प्रतिक्रिया का नियम अमोघ
व्यक्ति-चेतना को सचालित
करती पल-पल सज्ञा ओघ

वहलीश्वर के सिंहनाद से
व्याप्त हुए सारे दिक्कोण
हुआ तिरोहित नाद भरत का
ऐरावत सम्मुख गज गोण

अतरिक्ष ने कहा वाहुवलि
विजयी, जय लघुता को लब्ध
भरत श्रेष्ठ पर वल-ज्येष्ठ लघु
धरणी अवर सव ही स्तब्ध

वहलीश्वर के अतमन मे
उपजा एक नया उल्लास
भरतेश्वर को अपने विक्रम
मे केसे हो अव विश्वास?

सिंहनाद की माया भाई।
यह अन्तर्ध्वनि का अनुवाद
शब्द-शब्द की जाति एक है
खोज रहे हो क्यों प्रतिवाद?

बाहु बाहु में बल विकसित है
मल्ल-युद्ध देगा आमोद
हो जाएगी शैशव क्रीड़ा
होगा सबको मनोविनोद

हाथों का आजस आस्फालन
पैरों में था नभ का स्पर्श
बंधु-युगल की अद्‌भुत लीला
व्यापा दर्शक गण में हर्ष

भरत प्रफुल्लित निज पौरुष पर
देख रहा है शुचि आकाश
स्वस्थ बाहुबलि के भुजबल ने
किया असंभव का उपहास

क्रीड़ा कंदुकवत चक्रीश्वर
महाशून्य में हुआ विलीन
हाहाकार किया धरती ने
बहलीश्वर का विक्रम पीन

अर्थ और अनर्थ बोध का
किया अनुज ने सपदि विमर्श
बाहु-युगल में भरत नृपति को
झेल लिया सिमटा संघर्ष



व्यर्थ जगाया सुप्त सिह को
व्यर्थ किया रण का आवेश
क्यो सेनानी के चितन को
मान लिया अंतिम सदेश?

क्या सार्थकता हुई विजय की
वना हुआ हे अनुज अजेय
निश्चित युद्ध चतुष्टय में ही
इसे मिलेगा जय का श्रेय

वधो! मुष्टि निलय हे वल की
देखो उसमे कितना ओज
वज्रादपि यह अति कठोर है
कोमल जेसे अमल सरोज

है प्रहार की अद्भुत क्षमता
मुष्टियुद्ध का हो आरभ
खेल वालकोचित हे भाई!
नहीं कहीं कोई भी दभ

कोन माप सकता नरपुगव
शक्ति शव्द की सदा असीम
सुमनस जैसा मन भावन है
महारण्य पथ जैसा भीम

अनुज वचन से उद्वेलित हो
उठा भरत उद्धत आवेश
एक पुरुष का क्लेश अपर मे
पेदा कर देता सक्लेश

किया वाहुवलि के वक्षस मे
निष्ठुर वनकर मुष्टि-प्रहार
मिला अनुज को अग्रज से ही
पीड़ा का अनुपम उपहार

हुआ धरणि-अवर एकीकृत
दृश्य जगत् भी वना अदृश्य
शक्ति-सतुलन की दुनिया मे
कोई केसे वने अधृष्य?

हो सचेत तव वहलीश्वर ने
किया मुष्टि का वज्र प्रहार
मूर्च्छा मूर्च्छित भरतेश्वर हो
भूमिपात से जोडा तार

पता नहीं क्यो युद्ध-स्थल मे
धुल जाते सारे सवध?
क्रोध ओर आग्रह से वनता
नेत्र-युक्त मानव भी अध

भाई के प्रति इतने निर्मम
केसे हो ओ मेरे हाथ।
ममता से यदि शून्य बनोगे
देगा कोन तुम्हारा साथ?

करो करो उपचार भरत का
थामो अगुलियो मे पख
पवन परम ओपध है जग मे
मुखर बनेगे मगल शख



उठा भरत, टूटी घन मूर्च्छा
आया कैसे अरुण प्रभात?
वधुप्रवर। क्यो भूल गये हो
अभी दिवस उजला अवदात

खेल दड का अभी शेप हे
आओ खेले दोना आज
वह वेठेगा सिहासन पर
पहनेगा काटा का ताज

एक ओर पराजय की गति
जनमा लज्जा का अनुभाव
ओर दूसरी ओर व्यग्य से
उभर गए मानस मे घाव

उठा भरत ले रत्न-दड कर
किया पवन गति से आघात
हुआ अनुज आजानु भूमिगत
अनुभव जैस दिन मे रात

ऊर्जा का आवेश प्रवलतर
शेपनाग आया भूलोक
खिला हुआ था कुसुम कमल का
फेला परिसर मे आलोक

लोह दड ले भरत शीप पर
किया वाहुवलि ने प्रतिघात
हुआ प्रकपित भू का आशय
गर्ता का निर्माण अखात

मग्न भूमि में भरत कंठ तक
सभ्रम विभ्रम की आवाज
लुप्त हो रहा है भरतेश्वर
बहलीश्वर पहनेगा ताज

'शीश राहु का' सूत्र तर्क का
देखा सेना ने प्रत्यक्ष
केवल शाखा, तना नहीं है
धड़ से विरहित सिर का कक्ष

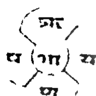
तन का पौरुष, बल मानस का
क्रोध अग्नि का ऊर्जा जाल
व्यक्त हुआ भरतेश क्लेश से
मुख-मंडल लगता विकराल

कोपाविष्ट समग्र चेतना
और पराजय की अनुभूति
ज्योति हुइ आच्छन्न भस्म से
नहीं रही प्रत्यक्ष विभूति

सम्यग् चिंतन सम्यग् निर्णय
अनावेश का दिव्य प्रसाद
वही मनुज पा सकता जिसने
चखा सहज उपशम का स्वाद

मोहानुभावोयमिति प्रसिद्ध
जानन्नजानन् भवतीह लोक
यद् वीतरागोस्ति पिता वरेण्य
मोहावलिप्तौ तनयौ यदाजौ।

श्रीऋषभायणे भरत-बाहुबलि-समरवर्णननामा
सप्तदश सर्ग



अठारहवा सर्ग

ऋषभ-निर्वाण

पण्णा ऋतूना न च कोपि भेद
कालादतीत परम परात्मा
हिमालयो वा पवनालयो वा
देशादतीतो वषभ क्व नास्ति?

एक विटपि की दो शाखाए
दोनो का अपना अनुभाव
हे निसर्ग दिनकर का आतप
रजनीपति का शीत स्वभाव

हो लघु भाई इसीलिए मै
क्षमा करूगा तव अपराध
नहीं जानता चक्र क्षमा को
कैसे होगी पूरी साध?

पूर्ण पराजय से जो सुलगी
अतस्तल म भीषण आग
उससे प्रेरित अग्रज मानो
खेल रहा असमय मैं फाग

समझदार भी कब कर पाता
चितन जब जब क्रोधाविष्ट
अतिक्रमण कर मर्यादा का
कौन मनुज रह पाता शिष्ट?

आवेशाकुल भरतेश्वर ने
फेका चक्र अनुज की ओर
हुए भयाकुल दनुज देव भी
धरती पर कोलाहल घोर

कितनी शका-आशकाए
कितने चितन कल्प विकल्प
लोहखड क्या कर पाएगा?
बहलीश्वर का शौर्य अनल्प



कितना ही वलशाली हो नर
अस्थि-मास से निर्मित देह
दिव्य शक्ति के सम्मुख वाती
कव तक खींच सकेगी स्नेह

चर्चा के मत और विमत का
कोलाहल हे कणातीत
इतने मे देखा आखो ने
घटित हुआ हे भावातीत

कर प्रदक्षिणा प्रणत भाव से
वहलीश्वर के चारा ओर
दक्षिण कर मे हुआ विराजित
शब्दातीत नियति का छोर

सशय से आदोलित मानस
मै या अनुज कोन चक्रेश?
अव तक मने भ्रम ही पाला
आज सत्य को मिला प्रदेश

यदि मे चक्री अनुज हाथ मे
कैसे आश्रित जेसा चक्र?
मान रखा मने पय जिसको
वह तो जल से पूरित तक्र

सशय और विकल्प शृखला
एक पलक म हुई प्रलव
देख रहा है कृपक सविस्मय
अकुर कैसे क्षण म स्तव

अब क्या होगा? अनुज करेगा
भरतेश्वर पर चक्र प्रहार
अगम अगोचर अकथ कहानी
अर्थ युद्ध का जन-सहार

व्योम मार्ग से उडा चक्र तब
आया कोलाहल का ज्वार
भ्रातृ-युद्ध के घटना-क्रम का
कैसे होगा उपसहार?

नम्र शिष्य की भाँति विनय नत
की प्रदक्षिणा, कर आरूढ़
आशका से मूढ जनो ने
कहा चक्र है कितना गूढ

भय की सरिता का तट देखा
चक्री ने ली सुख की सास
सघन घनाघन के गर्जन से
हुआ विकस्वर जैसे वास

मर्यादा के अतिक्रमण से
जगा बाहुबलि मे आक्रोश
हुआ विधुर सबध भ्रात का
रोष कहा होता निर्दोष?

उठा हाथ, तन गई मुष्टि भी
दौड़ा भरतेश्वर की ओर
रौद्र मूर्ति से लगी टपकने
साध्वस की धारा अति घोर



चक्र और चक्री दोना ही
केसे वच पाएगे आज?
परम-पूत इक्ष्वाकु वश की
केस वच पाएगी लाज?

तत्क्षण सुरगण के नेता ने
रोकी वहलीश्वर की राह
हट जाओ पथ से, क्यो उभरी
विना हेतु मरने की चाह?

नहीं मरेगे सभी अमर हम
पास अमरता का सदेश
अमृत तत्त्व म पले पुसे हो
फिर केसे मारक आवेश?

शात-शात उपशात वनो हे!
ऋपभ-ध्वज के वश वतस!
मुक्ता का आकाक्षी होगा
मानस सरवर का वर हस

सलिल विदु से सिक्त दुग्ध का
शात हो गया सहज उफान
शात हुआ आवेश जटिलतम
स्फुरित हुआ चितन अम्लान

हत! हत! आवेश क्लेश के
आवरणो का सरजनहार
वधु वधु के बीच कलह का
यही बीज है, यही प्रसार

वदला मानस, वदला चितन
बदल गया सारा ससार
सुना हुआ है पूज्य पिता से
त्याग परम जीवन का सार

युद्ध की समाप्ति

किस दिशा के छद लय मे
वढ रहा आगे चरण हे

प्रश्न चिह्नित चक्षुओ ने
एक ही प्रतिविव देखा
मनस के घन-वादलो मे
खचित कोई चित्रलखा
दूसरा पल शात रस का
प्रथम पल में विकट रण है

क्या हुआ रणभूमि को तज
वाहुवलि क्यो जा रहे हैं?
क्या ऋषभ के पार्श्व से
सदेश कपन आ रहे है?
आज स्पदित नील नभ भी
ध्वनि चलित वातावरण है
किस दिशा के छद लय मे
वढ रहा आगे चरण है

प्रश्न की सरिता प्रवाहित
कल्पना का ज्वार आया
मोन उत्तर शरद-द्विजपति
चादनी से जगमगाया
अचल हिमगिरि सा सुनिश्चय
त्याग की आभा प्रवण है
किस दिशा के छद लय मे
वढ रहा आगे चरण है



विजय की माला पहनकर
क्यों पलायन कर रहा है?
अभय का पहना मुकुट फिर
भीति मे क्या पल रहा है?
गूढ सी बनती पहेली
सत्य पर यह आवरण है
किस दिशा के छद लय म
बढ रहा आगे चरण ह

शून्य मे उभरा प्रवर स्वर
त्याग ही सुलझा सकेगा
युद्ध की इस अग्नि को यह
त्याग-नीर बुझा सकेगा
स्वार्थ विष सव्याप्त जग मे
त्याग ही तो अमृत कण है
किस दिशा के छद लय मे
बढ रहा आगे चरण हे

मौन वाणी, गात्र सुस्थिर
भुज युगल आजानु स्पर्शी
ध्यान मुद्रा मे अवस्थित
बाहुबलि मुनि पारदर्शी
प्रणत हो बोला भरत यह
शाति का नव सस्करण है
किस दिशा के छद लय मे
बढ रहा आगे चरण हे

है किया अपराध मैने
युद्ध भाई से लड़ा है
विजय का वरदान लेकर
यह हिमालय सा खडा है
हे क्षमासिन्धो! क्षमा दो
अब क्षमा की ही शरण है
किस दिशा के छद लय में
बढ़ रहा आगे चरण है

हो गया श्रुत अनसुना सा
ध्यान अविचल, अचल मन है
मौन का सवाद मधुतम
हो गया तन भी अतन है
प्रबल आस्था से उपस्कृत
ज्योति का यह विरल क्षण है
किस दिशा के छद लय मे
बढ रहा आगे चरण है

लौट आया चक्रवर्ती
युद्धस्थल अब शांतिस्थल है
बहलि का अधिकार पाने
सहज चंद्रयशा सफल है
अब विनीता की दिशा मे
भरत का अनुसचरण है
किस दिशा के छद लय मे
बढ रहा आगे चरण है

स
र्ग
१८



बाहुबलि का कायोत्सर्ग

है अहंकार ममकार युगल सेनानी
नृप मोह महाबल करता है मनमानी
इतिहास विश्व का इनने सकल रचा है
इनकी मादक मदिरा से कौन बचा है?

कैसे जाऊं मैं प्रभुवर की सन्निधि में?
कुछ ज्ञात और अज्ञात नियति की विधि में
लघु बांधव को प्रणिपात करूंगा कैसे?
अनुशासन का उल्लंघन भी हो कैसे?

मुनि जीवन-यात्रा का साधन संयम है
एकान्तवास जंगल का अति उत्तम है
हो क्षेत्र दूर, मन प्रभु से दूर नहीं है
हर करि-ललाट पर तो सिंदूर नहीं है

रुक गए चरण फिर आगे बढ़ने वाले
थम गए मुदिर सुरपथ पर चढ़ने वाले
चंचल काया में कायोत्सर्ग अचल है
अपने में रहना सबसे सुन्दर बल है

'स्थाणुर्वा पुरुषो वा' यह संशय पथ है
प्रत्यक्ष निदर्शन बाहुबलि अवितथ है
हलचल से होता निर्णय वह तो नर है
हलचल से विरहित होना स्थाणु-स्तर है

स्थिरता ने बाहुबली को स्थाणु बनाया
वल्ली ने कर-पद को अवलंब बनाया
आच्छन्न हरित से देह हुई है सारी
कच उत्तमांग के केशर की सी क्यारी

कधे पर खग-गण ने निज नीड बनाए
कोकिल ने पचम स्वर मे गाने गाए
आकाश भूमि ने अद्भुत दृश्य निहारा
कोई प्रगटा हे यह नूतन ध्रुवतारा

अविरल गति से यह समय चक्र चलता है
यह पारिजात नदन वन मे फलता है
चेतन्य अहकृति-मुक्त नगर का वासी
अपने मे अपने दर्शन का अभ्यासी

ऋषभ द्वारा सबोध

हे ब्राह्मि! सुन्दरि! देखो भ्रात तुम्हारा
तट पर अटका है, तीर्ण हुई जलधारा
है एक वर्ष से सयम व्रत का धारी
सर्वज्ञ दशा का सहज सिद्ध अधिकारी

हे द्वार वद, तुम दोनो जाकर खोलो
भाई को ममतासिक्त तुला से तोलो
आत्मा की विस्मृति कर वह देह हुआ है
पुद्गल का पुद्गल से फिर स्नेह हुआ है

निर्दिष्ट दिशा, निर्दिष्ट क्षेत्र अब आया
पर दृश्य नहीं है बधु प्रवर की काया
प्रभुवर्य ऋषभ की वाणी व्यर्थ न होगी
किस विपिन-कक्ष मे छिपा हुआ है जोगी

मानव ने खोजा सत्य छिपा रहता है
साकेतिक लिपि मे निज गाथा कहता है
यह स्थूल देह मानव की क्या छिप पाए?
आभामडल ने गीत मधुरतम गाए



आलोक-रश्मि ने अनुपम वलय बनाया
दिनकर ने जैसे अपना सदन सजाया
भगिनी-युग ने अपलक आखो से देखा
मानो चमकी हे नभ मे विद्युल्लेखा

यह वृक्ष नहीं है, निश्चय ही मानव है
यह वर्ण नहीं साधारण किन्तु प्रणव है
यह तेजपुज बतलाता ऋषभ तनुज हे
यह पेड-रूप मे आभायुक्त मनुज ह

परिपार्श्व देश मे अभिमुख होकर बोली
श्री बाहुबलि मुनि पहन रखी क्यो चोली?
देखो हे भाई! चक्षु युगल को देखो
अस्तित्व-तुला से निज आत्मा को तोलो

आत्मा का दर्शन प्रभुवर का आभारी
सब आत्माए सम, साम्ययोग मनहारी
हे बदन तो व्यवहार सत्य समता है
क्यो पनप रही मन मे अभिमान लता है?

बधो! उतरो, गज से उतरो उतरो अब
भूमी की मिट्टी का अनुभव होगा तब
गज-आरोही प्रभु-सम्मुख पहुच न पाता
आदीश्वर ईश्वर समतल का उद्गाता

इस अहभाव ने भाई! पथ रोका है
इस भवसागर मे मार्दव ही नौका है
क्या शिला शिला को पार लगा पाएगी?
चट्टान नहीं अकूर उगा पाएगी

क्यों नहीं खोलते वधुप्रवर? अब चक्षु
दो ध्यान सुनो भगिनी-युग आज विवक्षु
वक्तव्य हमारा जागृति का सुस्वर है
चेतन्य अनश्वर, अहकार नश्वर है

आत्मा की ध्वनि से कपित सारा भूतल
कपन से आहत मुनियर का अतस्तल
यह परिचित सा स्वर आज कहा से आया?
अज्ञात भूमि का किसने पता वताया?

क्या साध्वी ब्राह्मी ओर सुन्दरी आई?
क्या आदीश्वर का सदेशा हे लाई?
वल्ली ने कैसे मडप मुझे वनाया?
पक्षी ने देखो केसा नीड सजाया?

मे जगम हू फिर कसे अचल वना हू?
मे आत्मा हू फिर केसे स्तभ वना हू?
मने अतर म रची स्तभ की माया
फिर वाह्य जगत् म स्तभ वनी यह काया

में उस दुनिया का जिसमे स्तभ नही हे
म उस दुनिया का जिसमे दभ नहीं हे
आत्मा का दर्शन पहले ही हो जाता
अभिमान नहीं यह पथ मे आडे आता

निर्मल निमलतर परिणामो की धारा
निर्मल लेश्या ने देखा निकट किनारा
प्रभु-दर्शन को जेसे ही पैर उठाया
आवरण वना पल मे वादल की छाया



आत्मा का दर्शन, दर्शन आदीश्वर का
साक्षात् हुआ भगिनी का, अपने घर का
सब एक साथ ही दर्शन पथ मे आए
मधुमास मास मे कुसुम सभी विकसाए
अब बढे चरण, पहुचे प्रभु की सन्निधि मे
कितना अकित अज्ञात-पटल की विधि मे

भरत-सबोध

मगलध्वनि मगलपाठक की
जागृति का पहला सदेश
स्वामी जागो, निद्रा त्यागो
मगलमय सारा परिवेश

पहले क्षण का पहला चितन
देता है कोई सकेत
आज भरत के मन पर उभरा
चित्र नवल अभिनव साकेत

पिता नही है, बधु नहीं है
ओर नही हे भगिनी अत्र
केवल भरत अकेला स्वामी
यह केसा शासन का छत्र?

एक दिवस वह गृह परिसर म
रहता था पूरा परिवार
एक दिवस वह भरत अकेला
अद्‌भुत है जीवन की धार

वास्तव म हर व्यक्ति अकेला
हे समुदय केवल व्यवहार
भूल गया हू निश्चय नय को
स्थूल बना जीवन का सार

नहीं एक भी सरिता ऐसी
जिसका अविचल सलिल प्रवाह
कौन मनुज इतिवृत्त लिखेगा
है अनित्य ही सबकी राह

एक और क्षणभग भाव से
व्याप्त हुआ मन का हर कोण
रवि की प्रथम रश्मि का स्वागत
सहज हुआ अतस्तल गोण

हुआ प्रकंपित मूर्च्छा का पद
जाग उठा अतर का बोध
अनासक्ति-सोपान विनिर्मित
दूर हुए सारे अवरोध

आदीश्वर के चरण-कमल की
सेवा में पहुचा सानद
भ्रातृ-मिलन के वे क्षण अद्भुत
लिखा गगन ने लेख अमद

प्रभुवर! मेरे बधु प्रवर ने
आत्म-राज्य मे किया प्रवास
केवल मेरा ही है स्वामिन्!
भोतिकता मे अटल निवास

कब वह शतक बनेगा पूरा?
कब होगा मेरा सन्यास?
कब होगी आत्मा की गति-मति?
अतस्तल का अमल प्रकाश?



प्रश्न नहीं यह अतर्मन की
प्रवल वेदना है जगदीश।
इस कृशानु को शात करे वह
सलिल मिले, दो प्रभु! आशीष

ऋषभ

आत्मा का सवोध मिला है
फिर क्यो भरत! वने हो दीन?
विपुल जलाशय मे रहकर भी
हत! प्यास से आकुल मीन

अनासक्ति की प्रवर साधना
वढे शुक्ल का जेसे चद्र
जल से ऊपर जलज निरतर
रवि रहता नभ मे निस्तद्र

मन मिला जीवनशेली का
वदला मानस, वदला चित्त
हृदय वदलता, दिशा वदलती
स्वय वदल जाता हे वृत्त

आया चक्री पुन अयोध्या
अतस्तल म हुआ प्रकाश
पहले साध सदन म रहता
अव आत्मा मे हुआ निवास

अनासक्ति क सिहासन पर
हुआ चक्रवर्ती आसीन
इस आसन पर वठ पुरातन
दीरा रहा ह आज नवीन

वही मार्ग है, वही महल है
वही मनोहारी रनिवास
वही खाद्य है, वही पेय है
वही मूर्त्त अनुभव आकाश

वही सर्व है, वही पर्व है
नहीं सिर्फ वह दृष्टि निवेश
बदल गई है वस्तु कल्पना
नहीं वस्तु से किंचित क्लेश

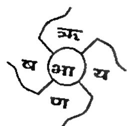
शुष्क भित्ति पर शुष्क धूलि का
कभी नहीं होता उपलेप
भरतेश्वर के मन पटल पर
नहीं रहा कोई विक्षेप

बीते युग, बीते सवत्सर
कालावधि का अपना कार्य
कुछ होता परिहार्य जगत मे
कुछ तो होता है अनिवार्य

आया एक मुहूर्त अनुत्तर
पावन मजुल स्नानागार
स्नानविधा मे लीन भरत नृप
हुआ प्रकपन एकाकार

गिरी मुद्रिका, यह अनामिका?
कहा गया इसका सोदर्य?
स्नानागार बना चितन का
आलय लय मे है ऐश्वर्य

सर्ग १८



पहनी पुनरपि, अगुलि शोभा
वढ़ी, वढा चितन का क्षेत्र
वोधि देख सकती है जिसको
उसको देख न पाता नेत्र

पुन निकाली, पुनरपि पहनी
हुआ सत्य का साक्षात्कार
पर-पुद्गल से तन की शोभा
तन भी पुद्गल का आकार

आत्मा हू म, आत्मा मे ही
होगा मेरा अविचल धाम
आत्मा की अनुभूति अनुत्तर
सुन्दर सुन्दरतम अभिराम

शीश-महल की निमलता से
मन की निर्मलता का योग
निर्मलता के पावन-पल मे
वन जाता है मनुज निरोग

मूल्य विव का नैसर्गिक है
क्या है मूल्यहीन प्रतिविव?
सवकी अपनी-अपनी महिमा
कटुक किन्तु हितकर है निम्व

देख रहा हे दर्पण को नृप
दिखा सहज अपना प्रतिविव
प्रेक्षा करते-करते उज्ज्वल
प्रगटा परम पुरुप का विव

आत्मा का साक्षात् हुआ है
उदित हुआ है केवलज्ञान
सहज साधना सिद्ध हुई
अनासक्ति का यह अवदान

छूट गया साम्राज्य सकल अब
नहीं रहा जन का सम्राट्'
टूट गए सीमा के बंधन
प्रगट हुआ है रूप विराट

नहीं अयोध्या, नहीं महल से
शेष रहा कोई अनुबंध
जाग गया मुनि अंतस्तल का
केवल आत्मा से संबंध

पहली पीढ़ी ने अगली को
सौंप दिया भौतिक सर्वस्व
शतक हुआ परिपूर्ण ऋषभ की
सन्निधि मे पाया वर्चस्व

ऋषभ का निर्वाण

हुआ मृत्यु की सीमा से पर-
वर्ती तट का साक्षात्कार
अब विदेह है देह निवासी
मुक्त, मुक्ति का भी ममकार

अष्टापद की पावन भूमि
तपोभूमि प्रभु की प्रख्यात
नभ-मंडल की नई लालिमा
नया नभोमणि, नया प्रभात



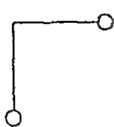
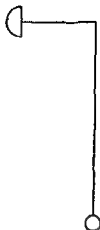
छह दिन का अनशन निश्चलतम
देह-यष्टि नव सृष्टि नितात
पर्यंकासन की मुद्रा म
सिद्ध मुक्त प्रभु हुए प्रशात

भरत उपस्थित, इन्द्र उपस्थित
ओर उपस्थित साधु समाज
श्रावक गण सव देख रहे है
पल मे अपलक केसा व्याज

नित्य नहीं कोई भी देही
है सारा सयोग अनित्य
स्वामी का निर्वाण हुआ है
कौन वनेगा अव आदित्य?

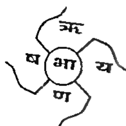
यस्य प्रसादात् उदितोदितोऽभूत्
श्रीचक्रवर्ती भरतो महिम्ना
तस्याह्रिपद्मे भ्रमरायमाण
चित्त न केषामुदयाशुमाली।

श्रीऋषभायणे ऋषभनिर्वाणवर्णननामा
अष्टादश सर्ग

स
र्ग
१८





सत्य इतना ही नहीं,
जितना कि म हू मानता
व्योम इतना ही नही
जितना कि म हू जानता
यह असीम, इसे न अपने
सदन तक सीमित करो
पर सदन मे भी गगन हे
सत्य को स्वीकृत करो

ऋषभ का अवतरण गति का
प्रगति का अवतार है
युगल जीवन का समाजी-
करण मूलाधार है,
तरु निवासी नगरवासी
भवन का विस्तार हे
बन गया परिवार जो
सबध का आकार हे

क्षेत्र कृषि का खुल गया
व्यवसाय का प्रारभ है
स्वत्व से उपजी सुरक्षा
शस्त्र का विष्कभ है
पठन-पाठन की विधा का
नव्य अनुभव हो रहा
कर्म निचित अकर्म पर
जेसे प्रभावी हो रहा

राज्य की शिशु कल्पना मे
कलकना शैशव रहा
प्रमुख था आत्मानुशासन
प्रकृति ने सब कुछ कहा
सरलता है, नम्रता है
क्रोध लोभ प्रशान्त है
बाह्य शासन की कथा तो
सहज ही विश्रान्त है

सरल राजा, सरल जनता
सरल शासन-तन्त्र है
व्याप्त भूमी और नभ मे
सरलता का मन्त्र है
कलह, अभ्याख्यान, पर-
परिवाद ये अज्ञात है,
अल्प इच्छा, अल्प सग्रह
सहज सब निष्णात है

अरुज तन है अरुज मन है
भावतन्त्र विशुद्ध है
ग्रथ की शिक्षा नहीं, न च
ग्रथकार प्रबुद्ध है
प्रकृति का सामीप्य, कृत का
शून्य तुल्य विकास है
श्वास की सवदेना मे
बोलता विश्वास है



पाठ आत्मा का मिला
आत्मानुशासन सिद्ध है
वस्तुओ की अल्पता मे
भी समाज समृद्ध है
तोप की अनुभूति सुख है
दु ख परम अतोप है
तोप से अपराध-विरहित
चेतना निर्दोप है

चड है मति ऋद्धि वल की
गर्व का आवेश है
मिथुन सहसा कार्यकारी
भाव का सक्लेश है
धर्म तत्व अदृष्ट, उद्धत
भावना से शूर है
सविभाग न जानता वह
मोक्ष पथ से दूर है।

पालना गुरुजन वचन की
शिष्टता का वोध है
नम्रता का अनुसरण ही
सफलता की शोध है
ऋपभ के जीवन-चरित का
आत्मविद्या सार है
केन्द्र मे है चैत्य आत्मा
परिधि मे ससार है।

येनोपदिष्टः प्रतिमोक्षमार्गः
श्रीवर्धमानः पुरुषोत्तमः सः
तत् शासनं सम्प्रति वर्तमानम्
आत्मार्थिनामात्महिताय सिद्धम् ।

येनोपनीता जिनशासनस्य
श्रीवृद्धिराज्ञा प्रगुणा विधाय
तस्यास्ति भिक्षोर्गुणगौरवाढ्य
आश्वासविश्वासमयो गणोऽयं ।

श्रीभारमल्लो गुरुभक्तिलीनः
श्रीरायचन्द्रः प्रशमाब्धिचन्द्रः
श्रीजीतमल्लः श्रुतवीचिमाली
संवर्धकः शासनसंपदायाः ।

साम्यं श्रितः श्रीमघवामुनीन्द्रः
श्रीमाणको मान्यवरो महिम्ना
श्रीडालचन्द्रो रवितुल्यतेजा
श्रीकालुरामो नयनाभिरामः ।

उप्तानि बीजानि नवोदयस्य
प्रापुर्वरेण्यं शतशाखिरूपम्
यस्य प्रयत्नेन चिरन्तनेन
पूज्यः स सर्वैस्तुलसी महात्मा ।

प्र श स्ति



भव्या गाथामादिनाथस्य नाथ
हिया रम्या प्राप्नुमो नेति चित्रम्
आदिष्टोऽह तेन पुण्याशयेन
काव्य कार्य तस्य वृत्त समीक्ष्य।

तस्यानुग्रह एवान्वेष्य
साफल्य सकलायासस्य
केवलमत्र महाप्रज्ञोस्ति
शब्दाना सकलर्नानिमित्तम्।

प्रारब्धा वैक्रमीयाब्दे
चत्वरिंशत्तमे वरे
सप्ताधिके सुनगरे
पालीनाम्ना प्रतिष्ठिते।

कार्याधिक्येन जातोऽस्ति
प्रलय समयो विधौ
लाडनूनगरे पूर्ति
त्रिपचाशति वत्सरे।

ı

- भिक्षु विचार दर्शन
- जीव अजीव
- जैन परम्परा का इतिहास
- अनेकान्त है तीसरा नेत्र
- मन का कायाकल्प
- सबोधि
- मैं कुछ होना चाहता हू
- जीवन विज्ञान
  शिक्षा का नया आयाम
- जीवन विज्ञान
  स्वस्थ समाज रचना का सकल्प
- कैसे सोचे ?
- श्रमण महावीर
- अवचेतन मन से सम्पर्क
- जीवन की पोथी
- सोया मन जग जाये
- अहिसा के अछूते पहलु
- अमूर्त चिन्तन
- अस्तित्व और अहिंसा
- तेरापथ शासन अनुशासन
- अभ्युदय
- चित्त और मन
- समयसार
  (निश्चय और व्यवहार की यात्रा)
- भेद मे छिपा अभेद
- समाज व्यवस्था के सूत्र
- ऋषभ और महावीर
- अपना दर्पण अपना बिम्ब
- तेरापथ
- अप्पाण सरण गच्छामि
- धर्मचक्र का प्रवर्तन
- प्रेक्षाध्यान सिद्धान्त और प्रयोग
- सुबह का चिन्तन
- पुरुषोत्तम महावीर
- सुप्रभातम्
- कैसी हो इक्कीसवीं शताब्दी ?
- ऋषभायण
- अशब्द का शब्द
- महावीर का पुनर्जन्म